१.बौद्ध चर्यापद, २. बौद्ध चर्यापदक अंग्रेजी अनुवाद आ ३.किछु मैथिली चर्यापद (बांग्ला लिपिमे)

१

बौद्ध चर्यापद (सौजन्य- म. म. हरप्रसाद शास्त्री, १९०७, जयधारी सिंह, १९६९) (पृ. ३-९५)

२३ कवि ५० टा चर्यापद संख्या [लुइपाद १, २९; कुक्कुरीपाद २, २०, ४८; विरुबपाद ३; गुण्डारीपाद ४; चत्तिलपाद ५; भुसुकुपाद ६, २१, २३, २७, ३०, ४१, ४३, ४९; कान्हापाद ७, ९, १०, ११, १२, १३, १८, १९, २४, ३६, ४०, ४२, ४५; कम्बलाम्बरपाद ८; डोम्बीपाद १४; शान्तिपाद १५, २६; महिधरपाद १६; वीणापाद १७; सरहपाद २२, ३२, ३८, ३९; शबरपाद २८,५०; आर्यदेवपाद ३१; ढेनढनपाद ३३; दारिकापाद ३४; भादेपाद ३५; ताडकापाद ३७; कनकनापाद ४४; जयनन्दीपाद ४६; धमपाद ४७; तंत्रीपाद २५]

१६ राग ४७ चर्यापद संख्या- ३ टा चर्यापद संख्या -२४, २५, ४८ (इन्द्रताल २४; गीति- २५, पटह- ४८)- **मे राग अनुपलब्ध** [पतमञ्जरी १, ६, ७, ९, ११, १७, २०, २९, ३१, ३३, ३६; गबड बा गौड़ २, ३, १८; आरु ४; गुर्जरा, गुञ्जरी बा कान्हा-गुञ्जरी ५, २२, ४१, ४७; देवकरी ८; देशाखा १०,३२; कामोद १३, २७, ३७, ४२; धनाशी बा धनश्री १४; रामकरी १५, ५०; बलडी बा बराडी २१, २३, २८, ३४; शबरी २६, ४६; मल्लारी ३०, ३५, ४४, ४५, ४९; मालासी ३९; मालासी-गाबुरा ४०; बांगल ४३; भैरवी १२, १६, १९, ३८]

२

बौद्ध चर्यापदक अंग्रेजी अनुवाद (१-४८) [भुसुकपाद चर्यापद संख्या ४९ आ शबरपाद चर्यापद संख्या ५० केर अनुवाद नै देल गेल अछि।] (पृ. ९७-११५)

३

किछु मैथिली चर्यापद (बांग्ला लिपिमे) [सौजन्य- पार्थ प्रतिम राय] (पृ. ११७-१२२)

१

बौद्ध चर्यापद (सौजन्य- म. म. हरप्रसाद शास्त्री, १९०७, जयधारी सिंह, १९६९) (पृ. ३-९५)

२३ कवि ५० टा चर्यापद संख्या [लुइपाद १, २९; कुक्कुरीपाद २, २०, ४८; विरुबपाद ३; गुण्डारीपाद ४; चत्तिलपाद ५; भुसुकुपाद ६, २१, २३, २७, ३०, ४१, ४३, ४९; कान्हापाद ७, ९, १०, ११, १२, १३, १८, १९, २४, ३६, ४०, ४२, ४५; कम्बलाम्बरपाद ८; डोम्बीपाद १४; शान्तिपाद १५, २६; महिधरपाद १६; वीणापाद १७; सरहपाद २२, ३२, ३८, ३९; शबरपाद २८,५०; आर्यदेवपाद ३१; ढेनढनपाद ३३; दारिकापाद ३४; भादेपाद ३५; ताडकापाद ३७; कनकनापाद ४४; जयनन्दीपाद ४६; धमपाद ४७; तंत्रीपाद २५]

१६ राग ४७ चर्यापद संख्या- ३ टा चर्यापद संख्या -२४, २५, ४८ (इन्द्रताल २४; गीति- २५, पटह- ४८)- **मे राग अनुपलब्ध** [पतमञ्जरी १, ६, ७, ९, ११, १७, २०, २९, ३१, ३३, ३६; गबड बा गौड़ २, ३, १८; आरु ४; गुर्जरा, गुञ्जरी बा कान्हा-गुञ्जरी ५, २२, ४१, ४७; देवकरी ८; देशाखा १०,३२; कामोद १३, २७, ३७, ४२; धनाशी बा धनश्री १४; रामकरी १५, ५०; बलडी बा बराडी २१, २३, २८, ३४; शबरी २६, ४६; मल्लारी ३०, ३५, ४४, ४५, ४९; मालासी ३९; मालासी-गाबुरा ४०; बांगल ४३; भैरवी १२, १६, १९, ३८]

द्वितीय खण्ड

चर्यागीत

(मूल, छाया, व्याख्या, पा० श० अनुक्रमणिका)

सरहपाद

१ (२२)[1]

अपणे रचि रचि भवनिर्वाणा[2]।
मिछेँ लोअ बन्धावए अपणा ॥
अम्हे[3] ण जाणहुँ अचिन्तजोइ।
जाम मरण भव कइसण होइ ॥
जइसो[4] जाम मरणवि तइसो।
जीवन्ते मइलेँ[5] णाहि विशेसो ॥
जा एथु जाम मरणे विसङ्का[6]।
सो करउ रस रसानेरे कङ्खा ॥
जे सचराचर तिअस भमन्ति।
ते अजरामर किम्पि न होन्ति ॥
जामे काम कि कामे जाम।
सरह भणति अचिन्त सो धाम ॥

× × ×

अपने रचि रचि भव निर्वाणा।
मिथ्येँ लोक बन्हाबए अपना ॥
हम न जानी अचिन्त्य योगि (गी)।
जन्म मरण भव कइसन होइ ॥
जइसे जन्म मरणो तइसे।
जीने मुइने नाहि विशेषे ॥
जे एत जन्ममरणे विशङ्का।
से करओ रस रसायन (क) कांक्षा ॥

१। कोष्ठक संख्या, सभगीतमे, चगीको, च॰ वि॰ पोथीक तत्तद्गीतक संख्या थिक।
२। सेन—निवाणा ३। सेन—अम्भे ४। सेन—जइसा
५। चगीको। शास्त्री, सेन—मअले ६। सेन—वि सङ्का

जे सचराचर त्रिदश (पुर) भ्रमथि ।
से अजरामर किमपि (किछु) न होथि ॥
जन्मेँ कर्म की कर्मेँ जन्म ।
सरह भणथि अचिन्त्य से धर्म ॥

जगतक बन्धन आ' मोक्ष एहि दूनू विकल्पकेँ रचि रचि, कपोल-कल्पित कए, व्यर्थेँ लोक अपनाकेँ बन्हैत अछि। हम तँ अचिन्त्ययोगसिद्ध भए गेलहुँ (परमात्मलीन भए गेलहुँ), आब तँ बुझबहिमे नहि अबैत अछि जन्म-मरण लक्षित जगतक स्वरूप केहन छैक। हमरा हेतु तँ जेहने जन्म तेहने मरण, कारण जीवन्मुक्त छी (जीवित रहितहुँ मोक्ष प्राप्त कएने छी)। आब जीवन की ? आ' मृत्युए की ? दूनूमे कोनो विशेष नहि प्रतीत होइत अछि। जकरा जन्म-मरणक विकल्प रहैत छैक से रस (-सिद्धिक पश्चात् परमानन्द) तथा रसायनादि द्वारा योगसाधनाक इच्छा करैत अछि। जा' धरि आत्मा चराचरलोकमे, मृत्युभुवन आ स्वर्गमे, भ्रमण करैत रहैत अछि ता' धरि ओ अजर अमर (मुक्त) नहि मानल जाएत (स्वर्गहुसँ तँ पुण्यक्षय भेला पर पतन देखले गेल अछि)। मुक्ति ओएह थिक जकर पश्चात् आत्मा नित्य अविनाशी आनन्दमे लीन भए जाइत अछि। सरह कहैत छथि, हमरा एहि विवादमे नहि जेबाक अछि, हम इएह जनैत छी जे वस्तुतः एकेटा धाम (पवित्र लक्ष्य), अछि, ओ थिक अनुत्तरत्वलाभ, शिवत्वलाभ, जे अचिन्त्य थिक, अवाङ्मनसगोचर थिक।

२ (३२)

नाद न बिन्दु न रवि शशि मण्डल[१] ।
चिअराअ सहावे मुकल ॥
उजु रे उजु[२] छाड़ि मा लेहु रे वङ्क ।
निअडि[३] बोहि मा जाहु रे लाङ्क ॥
हाथे रे[४] काङ्कण मा लेउ दापण ।
अपणे अपा बुझ तु निअमण ॥
पार उआरेँ सोइ मजिइ[५] ।

१। चगीको। शास्त्री, सेन—न शशि (ससि) मण्डल
२। सेन—दुद्दु रे उज्ज ३। चगीको। शास्त्री—निअहि । सेन—निअड्हि
४। सेन। शास्त्री—हाथेरे ५। चगीको। शास्त्री, सेन—गजिइ

दुज्जण साङ्गे अवसरि जाइ ॥
बाम दाहिण जो खाल विखला।
सरह भणइ बापा[६] उजुबाट भाइला ॥

× × ×

नाद न बिन्दु न रवि-शशिमण्डल।
चित्तराज स्वभावें खुजल (मुक्त) ॥
सोझ रे ! सोझ छाड़ि न लएह वङ्क (ा)।
निअर बोधि न जाह रे ! लङ्क (ा) ॥
हाथे रे ! कङ्कण न लएह दर्पण।
अपने आत्मा बुझह तों निज मन ॥
पार उबारें से डूबए (मज्जति)।
दुर्जन सङ्ग (जे) अपसरि जाए ॥
बाम-दहिन जे खद्धा-खुद्धी (छल)।
सरह भनइ बाप ! सोझ बाट भेल ॥

चित्तक शोधनक हेतु नाद, बिन्दु, रवि-शशिमण्डल कथूक साधनक प्रयोजन नहि। चित्तराज स्वभावतः मुक्त छथि, हुनका सोझहि बाटपर जाए दहुन, टेढ़ बाटपर नहि। निकटहिमे बोधि, परम प्रकाश-विमर्श-बोध प्राप्त होएतह, तखन चित्तकें दूर देश लङ्का दिशि नहि लए जाह। शरीरहिमे समस्त ब्रह्माण्ड तथा सभक सार तत्त्व शिवशक्ति छथि तखन ओहि परम सत्ताकें देहमे नहि ताकि अनतह की तकैत छह ? हाथमे कगना तखन अएनाक काजे की ? अपनहि आत्मासँ अपन मनकें चिन्हह, आत्म-बोध भेला पर अपन मनकें चिन्हिए जएबह। जे दुर्जन (अन्य सम्प्रदायक पोषक अचार्य) क सङ्गमे पड़ि जाइत छथि आ' एहि सहजमार्गसँ अपसृत भए जाइत छथि से जगतक पार-बारीमे डूबि जाइत छथि, जन्ममरणक चक्रमे नष्ट भए जाइत छथि। सरह कहैत छथि, बाम-दक्षिण मार्गमे जे खद्धा-खुद्धी छल से सभ एहि बाटमे नहि रहल। ई बाट, कौलमार्ग, सोझ बाट भए गेल।

६। सेन—बपा।

३ (३८)

काअ णावड़ि[1] खाण्टि मण केड़ुआल ।
सद्गुरुवअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ[2] ।
आन[3] उपाये पार ण जाइ ॥
नौ वाही[4] नौका टाणअ गुणे[5] ।
मेलि मेलि[6] सहजे जाउ ण आणेँ ॥
बाटत भअ[7] खाण्ट वि[8] बलआ ।
भव उलोलेँ विषअ बोलिआ[9] ॥
कुल लइ खर सोन्तेँ[10] उजाअ ।
सरह भणइ गअणेँ समाअ[11] ॥

× × ×

काय नावक खुट्टी मन करुआरि ।
सदगुरुवचने धर पतबार ॥
चित्त थिर करि धरहु रे नाव [ह] ।
आन उपायेँ पार न जाह ॥
नाव - वाही नौका टानए गुणेँ ।
मोलि मीलि सहजेँ जाउ न आनेँ ॥
बाटे भय खड्गो बली ।
भव - उल्लोलेँ विषय तोड़ी [तोड़ि] ॥
कुल लए खर सोतेँ उजाह[12] ।
सरह भनथि [तोँ] गगने समाह ॥

१। सेन-णावड्हि २। सेन—नाही। तु० मैथिली 'नाह' (निम्नवर्गक शब्द)
३। चगीको। शास्त्री, सेन—अन
४। सेन—नौवाही ५। सेन—टागु अगुणे ६। चगीको। शास्त्री, सेन—मेलि मेल
७। चगीको। शास्त्री, सेन—बाट अभअ
८। चगीको। शास्त्री—खाणटवि। सेन—खाणठा वि
९। सेन—वि बोलिआ १०। सेन। शास्त्री—सोन्ते ११। सेन—पमाएँ
१२। मैं० 'उजहिआ' शब्द द्रष्टव्य

कायकेँ नौका बनाए आ' तकर खुट्टी (अनाहतचक्र) मे बान्हल मनकेँ करुआरि बनाए सद्‌गुरुवचनकेँ पतवार (कर्णधार द्र० बागची) मानि पकड़ह। चित्तकेँ स्थिर कए एहि नावकेँ, शरीरनौकाकेँ, पकड़ि आगाँ बढ़ह। आन उपायसँ भवसागर पार नहि कए सकबह। बाह्य जगतमे नौका-वाहक अन्य गुण (वा रस्सी) सँ नाव खेबैत अछि, एहि मार्गमे ओहिसभ गुणक प्रयोजन नहि, सहजस्वरूप शिवशक्तिक अन्तरङ्ग बनि आगाँ बढ़ह, आन रीतिएँ नहि बढ़ह। बाटमे भयास्पद तत्त्व वा घटना भेटतह, प्रतीत होएतह जे खड्ग धारण कएने दानवीय जीव तोरा पथच्युत करबाक हेतु कामादिरूपमे लागल छह, आ' भव-उल्लोलक प्रसङ्गमे अनुभूत विषय-वासनाकेँ तोड़ि, कुलाश्रित भए, शक्तिक आश्रित भए (कौलमार्गें), भवसागरक प्रखर स्रोतमे आगाँ बढ़ह पार करह। सरह कहैत छथून्ह—तोँ शून्यगगनमे अन्तर्लीन भए जाह, महती-शक्तिक अभिन्न बनि जाह।

४ (३६)

सुइणा ह अविदार अरे निअमन तोहोर दोसे[१]।
गुरुवअणविहारेँ रे थाकिब तइ घुण्ड कइसे ॥
अकट हूँ भव इ गअणा[२]।
बङ्गे जाया निलेसि परे भागेल तोहोर विणाणा ॥
अदभुअ भवमोह रे दिसइ पर अप्पणा।
ए जग जलबिम्बाकारे सहजेँ सुण अपणा ॥
अमिआ अच्छन्तेँ विस गिलेसि रे चिअ पररस अपा।
घरेँ-परेँका[३] बुझ्झिले मारि[४] खाइब मइ दुठ कुण्डबाँ ॥
सरह भणन्ति वर सुण गोहाली कि मो दुठ[५] बलन्देँ।
एकेले जग नाशिअ रे विहरहु सुच्छन्दे[६] ॥

× × ×

सपना हे ! अविद्याक अरे ! निज मन दोषेँ।
गुरुवचनविहारे रहबह तोँ घूमि कइसेँ ॥

१। सुइणेँ ह[त्थ्]अ बिदारअ रे निअ मन तोहोरेँ दोसे—चगीको
२। सेन—हूँ-भव गअणा ३। चगीको। शास्त्री—घरेँ परेक। सेन—घारेँ पारेँका
४। चगीको। शास्त्री—रे। सेन—म रे ५। सेन—दुठ्य
६। चगीको। शास्त्री—विहरहुँ सुच्छन्दे। सेन—विरहू ईइन्द्रे

अकट[७] हूँ-भव ई गगना ।
बङ्ग जाया लेलह, परे भागल तोहर विज्ञाना ॥
अद्भुत भवमोह रे ! देखाइ पर अपना ।
ए ! जग जलबिम्बाकारें सहजें सून अपना ॥
अमिअ अछेतें विष गिड़सि रे ! चित्त पररस आत्मा ।
घर-पर की बुझलह रे ! मारि खाएब हम दुष्ट कुण्डबा ॥
सरह भणथि वर सून गोशाला, कि मोर दुष्ट बलदें (बड़दें) ।
अकेले जग नाशल रे ! विहरह स्वच्छन्दे ॥

हे ! अरे ! तोहरा अपन मन अविद्या-दोषें यथार्थ प्रतीत होइत छह, किन्तु वस्तुतः ओहि प्रतीतिकें अयाथार्थ स्वप्न सदृश मात्र बुझह अथवा [डा० बागची-संस्करणक अनुसार] शून्यरूप हाथसँ तों अपन मनकें विदारण करह, दोष दूर करह । गुरुवचन-विहारमे तों कोना घूमि सकबह ? जखन तोहर मन एतेक दोषग्रस्त छह तखन ओ विहार कोना कए सकबह ? ई हूँबीजोद्भव गगन अखण्डनीय अछि अथवा ओ गगनहृदया हूँ-बीजोद्भवा महामाया अखण्डा छथि । देखह, तों जहाँ बङ्ग-जायाकें, शून्यस्वरूपिणीकें, जायाभावें स्वीकार कएलह कि परक्षणे तोहर मोहादिविज्ञान दूर भए गेलह । एहि संसारक मोह अद्भुत, पर-अपन एहन भेद प्रतीत होइत रहैत अछि । किन्तु तत्त्वदर्शीकें ई जगत् जलमे प्रतिबिम्ब जकाँ, चिद्घनक प्रतिबिम्ब जकाँ, महती शक्तिक आभास मात्र जकाँ, प्रतीत होइत अछि । एवं ओ अपनाकें सहज-साधना द्वारा शून्य आत्माक रूपमे देखैत छथि । हे चित्त ! अमृत (अमरत्वक साधन शक्ति-साधना आ' तकर परिणाम सामरस्य)क अछैते (ओकर सुविधा रहितहुँ) तों विष (-सदृश विषय) गिड़ैत छह, रे आत्मन् ! तों पररस (इतर पदार्थक रस)मे डुबाए मोहादिकें अभिन्न बनवैत छह । तों घर-पर एहन भावना की रखैत छह ? आब हम महामुद्राक आलिङ्गन कए सभ विषयवासनाक मूल उत्सहिकें मारि चिबा जाएब (कुचित्तहिक विनाश कए लेब) । सरह कहथि—की हमर पवित्र गोशाला (इन्द्रियशाला), शून्यक अधिष्ठान कायपीठ, बलद (बड़द वा मलिन चित्त, दुष्टक हेतु बलदेनिहार चित्त)सँ दुष्ट बनि गेल ? नहि । हम एकसरे विश्व (क बन्धन)कें नाश कए देब । रे चिन्मय चित्त ! स्वच्छन्द भए विहार करह ।

७ । मि० भा० को०—पृ० १

शबरपाद

१ (२८)

उँचा उँचा पावत तहिँ बसइ सबरी बाली ।
मोरङ्गिपीच्छ परहिण सबरी गिवत गुञ्जरी माली ॥
उमत सबरो पागल सबरो मा कर गुली गुहाडा तोहोरि[१] ।
निअ घरिणी नामे सहज सुन्दारी ॥
नाना तरुवर मौलिल रे गअणत लागेली डाली ।
एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवज्रधारी ॥
तिअ धाउ खाट पाड़िला[२] सबरो महासुहे सेजि छाइली ।
सबरो भुजङ्ग नैरामणि[३] दारी पेम्ह राति पोहाइली ॥
हिअ ताँबोला महासुहे कापुर खाइ ।
सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ ॥
गुरुवाक् पुञ्छआ[४] बिन्ध णिअमण बाणेँ ।
एके शरसन्धानेँ बिन्धह बिन्धह परमणिवाणेँ ॥
उमत सबरो गरुआ रोषे[५] ।
गिरिवरसिहरसन्धि पइसन्ते सबरो लोड़िब कइसे ॥

× × ×

ऊँच ऊँच पर्वत ताहि बसइ शबरी बाला ।
मोर-अङ्ग-पुच्छ पहिरन शबरी ग्रीवमे गुञ्जामाला ॥
उन्मत्त शबर ! पागल शबर ! न कर गुलो[६] गोहारि, तोहार ।
निज घरना नामेँ सहजसुन्दरी ॥
नाना तरुवर मौलल रे ! गगनहि लागल डारि ।
अकेली शबरी ऐ वन झूलइ कर्णकुण्डलवज्र धारि ॥
त्रिधातु खाट पड़ल शबर महासुखेँ सेज ओछाओल ।
शबर भुजङ्ग नैरात्मा दारिका प्रेमेँ राति पोहाओल ॥

१। चगीको । शास्त्री, सेन—तोहौरि
२। सेन—पड़िला ३। सेन—णाइणामणि
४। चगीको (पा॰टि॰)। शास्त्री, सेन—गुरुवाक पुञ्चआ ५। सेन—गरु आस रोषे
६। गुहामे लीन, साक्षी, आनन्दादि विकल्प

हिय-ताम्बूला महासुखें कपूर खाइ ।
सून नैरात्मा कण्ठे लए महासुखें राति पोहाइ ॥
गुरुवाक्-पुङ्खें बेध निज मन बाणें ।
एके शरसन्धानें बेधह बेधह परमनिर्वाणे ॥
उन्मत्त शबर गरुअ रोषें ।
गिरिवर-शिखर-सन्धि पैसैते शबर लडब कइसें ॥

ऊँच सुमेरुशिखरपर चिन्मयी ज्ञानमुद्रा बसैत छथि, हुनक ध्यान नवयौवना जकाँ कएल जाइत अछि। हुनक परिधान मयूर-पुच्छ सदृश चित्र-विचित्र भाव-विकल्प, ग्रीवामे गुञ्जामाला सदृश वर्णमाला । ओ शबरपादकेँ कहैत छथि—हे बताह शबर ! तोँ हमरा गुहा (मेरुगुहा)मे लीन कए विकल्प दिशि जएबाक हेतु (विग्रह धारण करबाक हेतु) गोहारि नहि करह । हमरा तोँ अपन अभिन्न, आत्माभिन्न गृहणी बुझह, हम नामहिसँ सहजसुन्दरी, त्रिपुर-सुन्दरी, स्वतः चिरन्तन सुन्दरि छी, हमरा तोँ ओही सहज शून्यरूपमे बिहार करए दएह। नाना अविद्याजनित दोषसभ ओहि सहस्रारस्थ (महासुख-चक्रस्थ) शून्यस्वरुप वृत्तमे लटकल अछि, ओहि सभसँ वस्तुतः ओ वृत्त झाँपल भए मौलाएल प्रतीत होएत (ध्यान देलासँ) । विषय-वासना कोनो सङ्ग नहि, (शुद्ध शून्यरूपा) शबरी ज्ञानमुद्रा (विमर्श स्वरूपिणी) एकसरे एहि सुमेरुपर्वतवनमे (चित्त-) मचकीपर झुलैत छथि; कानमे वक्रता (चक्र वा प्रपञ्च)क प्रतीक कुण्डल तथा वज्र (शिवक पुं-चिह्नक प्रतीक) धारण कएने छथि[१] । काय, वाक् तथा चित्त एहि तीनू तत्त्वक खाटपर पड़ि शबर सामरस्यमे (क हेतुएँ) शय्या बिछाए लेल । भुजङ्गधारी शिवरूप बनल शबर अपन क्लेशविदारिणी, त्रिविधताप-संहारिणी अर्धाङ्गिनी एहि नैरात्माक प्रीति-लीलाक सङ्ग राति (कुण्डलिनीयोगक अवधि) बिताओल । हृदयक महाराग-ताम्बूलक आ' सामरस्यसौरभयुक्त कपूरक भोग कएल । शून्य-चिन्मयी महामुद्राकेँ कण्ठमे (विशुद्धचक्रमे) लगाए अद्वैत-भावसँ शिवरूपमे शक्तिसन्नद्ध भए राति बिताओल । हे बालयोगिन् ! गुरुवाक्-पुच्छबाणसँ कुचित्तकेँ लक्ष्य कए बेध करह, कुचित्तक विनाश करह, तदनन्तर परम मोक्षक भेद एकहि संधान (गुरुमन्त्रबल)सँ करह । गुरुतर रोषेँ उन्मत्त शबर सहस्रारपर वा मेरुशिखरपर, बामदक्षिणक सन्धिस्थलमे प्रवेश कए परमपद, परमशिवत्व लाभ कएल । आब शबर मायासँ, विषय-वासनासँ, लड़ताह कोना ? आब तँ ओ मुक्त भए गेल छथि ।

१। ऊपर 'एकसर' सँ परमशिवपँ विरहितता नहि सङ्केतित अछि, कारण सं० टी०मे 'वज्रमुपायज्ञानं विधृत्य'देल अछि। ओ वज्र वा उपाय शिव (द्र० पाछाँ भूमिका अनु० ८३) मानल जाइत छथि। 'एकसरे' सँ केवल पञ्चस्कन्धविरहितता बुझबाक थिक [द्र० सं० टी०]।

२ (५०)

गश्रणत गश्रणत तइला बाड़ी[१] हेञ्चे कुराड़ी ।
कण्ठे नैरामणि बालि जागन्ते उपाड़ी ॥
छाड़ु छाड़ु[२] माश्रा मोहा विषम दुन्दोली ।
महासुहे विलसन्ति शबरो लइश्रा सुणमेहेली ॥
हेरि से मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला ।
सुकड़[३] ए से[४] रे कपासु फुटिला ॥
तइला बाड़िर पासेँर जोह्णाबाड़ी उएला[५] ।
फिटेलि अन्धारि रे आकाशफुलिश्रा ॥
कङ्गूरि[६] पाकेला रे शबरा शबरि मातेला ।
अणुदिन[७] शबरो किम्पि न चेबइ महासुहेँ भोला ॥
चारि वासे गड़िला रे दिश्रा[८] चञ्चाली[९] ।
तहिँ तोलि शबरो डाह कएला कान्दइ सगुणशिश्राली ॥
मारिल भवमत्ता रे दह दिहे दिधलि बली ।
हेर से सबरो निरेवण भइला फिटिलि सबराली[१०] ॥

× × ×

गगन-गगनमे तेसर बाड़ी भिकभोरि कुठारी ।
कण्ठे नैरात्मा बाला जगैते उपाड़ो ॥
छाड़ छाड़ु माया मोहा विषम द्वन्द्वला ।
महासुखे विलसैत शबर लए शून्यमहिला ॥
हेरि से मोर तेसर बाड़ी खसमे समतूला ।
शुक्ल हे ! से रे ! कपास फुटला ॥
तेसर बाड़ीक पासे ज्योत्स्नाबाड़ी उगला ।
फाटल अन्हार रे ! आकाश फुलएला ॥

१। सेन—बाड्ही २। चगीको। शास्त्री, सेन—छाड़् छाड़
३। चगीको। शास्त्री, सेन—षुकड़ ४। सेन—एसे
५। सेन—ता एला ६। चगीको। शास्त्री, सेन—कङ्गु चिना
७। चगीको। शास्त्री, सेन—अणुदिण ८। चगीको। शास्त्री, सेन—रे दिश्राँ।
९। चगीको—सं० टी० क प्रसङ्ग पा० टि०मे 'चराडाली' पाठ द्रष्टव्य।
१०। चगीको। शास्त्री—षबराली

कङ्गूरि पाकल रे! शबरा शबरी मातल।
अनुदिन शबर किमपि [किछु] न देखइ महासुखें भोल [र] ॥
चारि बासे गढ़ि रे! देल चञ्चाली (चण्डाली)।
तहं तौलि शबर डाह कएला कानइ सगुण शृगाली ॥
मारल भवमत्ता रे! दशदिशे दऽ देल बली [लि]।
हेरि से शबर निवृत्त भेल फाटल शबरालि [शबरत्व] ॥

शून्य, प्रतिशून्य एवं महाशून्यरूप तेसर बाड़ीकें चतुर्थशून्यरूप हृदयक कुठारसँ भिकभोरि कण्ठस्थिता महतीशक्ति, महामुद्रा (गृहिणी) शून्यताशक्ति जाग्रत भए उजाडि देल, वासनादिक वृक्षसभकें [जे ओहि शन्यसभमे संलग्न छल, तकरा] उपाडि फेकल। हे बालयोगिन्! माया-मोह, विषम द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व, त्यागह। देखह, आइ शबर शून्य (गगन) हृदया-महिला चिच्छक्तिकें अन्तर्लीन कए शिवरूपमे सामरस्य-सुखक भोग करैत छथि। तेसर बाड़ीकें, प्रकाश-प्रतिबिम्बसंमिलित महाशून्यकें, गगनक समतुल देखि हमर उज्ज्वल सदृश आत्मज्ञान स्फुटित भेल। महाशून्यक निकटे (केवल) ओहि प्रकाशपुञ्जक अनुसन्धान भेल, अज्ञानान्धकार फाटि गेल, ई तहिना असंभव छल जेना आकासकुसुम। चित्त परिपक्व भेल, प्रबुद्ध भेल (कङ्गूरिफलसदृश), ओकर आस्वाद कए सशक्ति शबर उन्मत्त छथि, परमानन्दरस-निर्भर छथि। अनुदिन सामरस्यमे डुबल, विभोर, शबरकें अन्य किछु नहि सुभैत छन्हि। ओहि चञ्चल विषय-वासनामय चित्तकें स्थिर कए चतुरानन्दमे निवसित कएल। ताहि दशामे शबर ओहि चित्तकें तौलल (ओजन बुझल) आ पुनः ओकरा दग्ध कए निर्गुणमे मीलि गेलाह, सगुण शृगाली विखिन्न अछि [विग्रहवती देवी खिन्ना छथि अनादर देखि]। अरे! भवमत्त नीच (मायाबद्ध) चित्तकें मारि, दशहु दिशामे ओकर बलि दए देल आ आब सभक रहस्यक साक्षात्कार कए शबर स्वयं निर्गुणब्रह्मरूप, परमशिवरूप, भए गेलाह; शबरत्व, जीवात्मत्व आब चल गेल, परमात्मत्व, परमशिवत्व आबि गेल।

लुइपाद

१ (१)

काआ तरुवर पञ्च वि डाल।
चञ्चल चीए पइठो काल॥

दिढ़[१] करिअ महासुह परिमाण ।
लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥
सअल समाहिअ[२] काहि करिअइ ।
सुख दुखेतेँ निचित मरिअइ ॥
एड़ि एउ[३] छान्दक बान्ध करण कपटेर[४] आस ।
सुनुपाख भिति लेहु रे पास ॥
भणइ लुइ आम्हे भाणे दिठा ।
धमण चमण बेणि पिण्डि[५] बइठा ॥

× × ×

काया तरुवर पाँचो डारि ।
चञ्चल चित्ते पैसल काल ॥
दृढ़ कए महासुख परिमाण ।
लुइ भनइ गुरु पूछिअ ज्ञान ॥
सकल समाधितः की कृत होए ?
सुख-दुःखसँ निश्चित मृत होए ॥
एड़ि एहु छन्दक बन्ध करणकपटक आश ।
सून-पक्ष-भित्ति लेहु रे पास ॥
भनइ लुइ हमे ध्याने दृष्टा ।
धमण-चमण दुइ पीढ़ी बैठा ॥

शरीर वृक्षवत् अछि, पाँचो ज्ञानेन्द्रिय तकर शाखा-प्रशाखा, जाहि द्वारा चित्त चञ्चल रहला पर विषयवासना ओहिमे प्रवेश कए लैत अछि। मुक्तिक दृष्टिएँ तँ विषयवासना काले थिक । तेँ चित्तकेँ स्थिर राखब आवश्यक, तहि-खन ओकर विकास, चिन्मयत्वप्राप्ति, सम्भव आ' बिनु चित्तक चिन्मयताक प्राणशक्तिकेँ शिवमे लीन करब सम्भव नहि, दोसर शब्दमे सामरस्य-सुखानुभूतिक हेतु चित्तक शोधनपर, कुचित्त-विनाशपर, जोर दैत बालयोगिगणकेँ गुरुसँ रहस्य-साधना-पद्धति बुझबाक हेतु आदेश दैत छथि। हुनक कहब अछि जे आन-आन यौगिक प्रक्रियासँ कोनो फल नहि। ताहिसभसँ सुख-दुःखक

१। सेन—दिट २। सेन—सहिअ ३। सेन—एव
४। चगीको। शास्त्री, सेन—करणक पाटेर ५। सेन—पारिड

चक्र बन्द होएब कठिन आ' सएह चक्र तँ मृत्यु थिक। एहि चक्रक विनाशे त मुक्ति थिक। किन्तु एहि चक्रक विनाशक हेतु इन्द्रियक आहार-विषयसभकेँ, ओहिपर लागल आशा-आकांक्षाकेँ, मनसँ ठेलए पड़त,शून्यस्वरूपिणी, गगनहृदया चितिक सङ्ग, अपरिणामिनी शक्तिक सङ्ग, तादात्म्य आवश्यक,हुनका भित्ति मानि ओहिपर ओङठब आवश्यक। तेँ लुइपादक अनुरोध अछि जे ओहि शून्यरूपिणीक भित्तिपर अवलम्बित होउ, ओहि भित्तिक सामीप्य बढ़ाउ, अन्तरङ्गता बढ़ाउ। ओ सिद्धाचार्य तँ स्वयं अनुभवप्राप्त छथि, नाड़ी-योग-साधन द्वारा ओ ई साक्षात् रूपमे देखने छथि जे इड़ा-पिङ्गला दूनूक मध्यभूता ब्रह्मनाड़ीमे कुण्डलिनीशक्ति प्राणशक्तिक सङ्ग मीलि ऊपर कोना उठैत छथि तथा ओही सङ्गमभूता सुषुम्ना-नाड़ीक अन्तरङ्गा ब्रह्मनाड़ीक द्वारा सिद्धक प्राणवायु महती शक्तिक रूपमे सहस्रारमे आनन्द, अनिर्वचनीय आत्म-शक्ति-मिथुनक आनन्द, दैत अछि। ओएह प्राणशक्तिक सङ्ग, कुण्डलिनीशक्तिक सङ्ग, प्रकाशरूप आत्माक सामरस्य अथवा, संक्षेपमे, शक्तिक सङ्ग शिवक सामरस्य तँ महासुख थिक वा मुक्ति थिक।

२ (२९)

भाव न होइ अभाव ण जाइ।
अइस[1] संबोहेँ को पतिआइ॥
लुइ भणइ बट दुलक्ख विणाणा।
तिअ धाए विलसइ उह लागे णा॥
जाहेर वाणचिह्नरूव ण जाणी।
सो कइसे आगम वेएँ बखाणी॥
काहेरे किस भणि मइ दिबि पिरिच्छा।
उदकचान्द जिम साच न मिच्छा॥
लुइ भणइ मइ भावइ[2] किस।
जा लइ अच्छम ताहेर उह ण दिस॥

× × ×

भाव न होइ अभाव न जाइ।
अइसन सबोधेँ के पतिआइ?

१। चगोका। शास्त्री, सेन—आइस २। चगोको। शास्त्री, सेन—भाइब,

लुइ भनइ बड़ दुर्लक्ष्य विज्ञाना।
त्रिधातुएँ विलसइ, ऊह लागे ना॥
जाहि (केर) वर्ण-चिह्नरूप न जानी।
से कइसेँ आगमवेदेँ बखानी॥
ककरा की भनि हम देब परीक्षा?
उदकचान्द जिमि सत्य न मिथ्या॥
लुइ भनइ हम भावी काहि।
जे लए छी ताहि (केर) ऊह न देखि (खी)॥

परमसत्यक अस्तित्व अलक्षित अछि, कारण अछि विषयवासनाक ओझराहटि। अनस्तित्वो नीक जकाँ मनमे पैसेत नहि अछि। एहन ज्ञानकेँ के पतिआएत? लुइ कहैत छथि—वास्तविक तत्त्वक परिज्ञान वा अभिज्ञान दुष्प्राप्य थिक, साक्षात् रूपमे ओ परमशिवक परमा स्फुरत्ता, महासत्ता, बोधगम्या नहि। ओ महासत्ता, चिति वा अपरिणामिनी सत्ता वा महती शक्ति अपन क्रीड़ाक माध्यम रखने छथि काय, वाक् तथा चित्त, जकरा एक शब्दमे त्रिधातु वा त्रितत्त्व कहि सकैत छी। कोना क्रीड़ा करैत छथि, ताहि दिशि ऊह कहाँ होइत अछि? ओहि कीड़ाक जँ ऊहापोह भए जाए तँ आत्मा वा परमशिवक परिचय अनायास भेटि जाएत। संक्षेपमे, प्रत्यभिज्ञा उपलब्ध भए जाएत। एहि आत्मप्रत्यभिज्ञाक हेतु छोटछीन सूत्रक निर्देश असम्भव। परमा सत्ताक आकार कोनहु वर्णचिह्नक आकार रहन्हि, तखन ने कोनहु सूत्रक निर्देशेँ हुनक प्राप्ति भए सकए? से तँ छन्हि नहि, तखन, हुनक वर्णन, आगम रहओ वा वेद, कए कोना सकत? केओ जँ प्रश्न पुछत तँ ओकर हृदयङ्गम उत्तर हम दए कोना सकबैक? अवाङ्मनसगोचरक स्वरूपकेँ शब्दसँ कोना व्यक्त कएल जाए? वस्तुतः परमात्मा वा वा परमशिव वा परमाशक्ति, जे कहल जाए, अव्याख्येय तत्त्व थिक। अधिकसँ अधिक ओहि प्रकाशक प्रतिबिम्ब मात्र देखल जा सकैत अछि। जेना जलमे चन्द्रक प्रतिबिम्बकेँ सत्यो कहि सकैत छी, यथार्थ चन्द्रक स्वरूप भासित होएबाक कारणेँ, असत्यो कहि सकैत छी, कारण ओ थिक तँ प्रतिबिम्बे, वास्तविक चन्द्र नहि, तहिना एहि जगतकेँ। परमशिवक स्वातन्त्र्य-शक्तिक स्फुरण वा परिणमन थिक ई विश्व, एहि विश्वरूपमे ओ अपनाकेँ आभासित करैत छथि, प्रतिबिम्बित करैत छथि, तेँ (तन्त्रक अनुसारेँ) ई जगत्

सत्ये थिक, हँ ओहि परमशिव वा परमात्माकेँ विश्वोत्तीर्ण मानलासँ तँ विश्व मिथ्ये बूझि पड़त, अधिकसँ अधिक प्रतिबिम्बे। लुइ कहैत छथि–तखन हम ई की करैत छी ? कोन शक्तिमे ओझराएल छी ? ओ सत्य छथि वा मिथ्या ? जनिका पकड़ने छी तनिक ऊह नहि होइत अछि, की करू किछु फुरैत नहि अछि।

गुण्डरीपाद

१ (४)

तियड्डा चापी जोइनि दे अङ्कवाली।
कमलकुलिश घाण्टि करहुँ विआली॥
जोइनि तँइ बिनु खनहिँ न जीवमि।
तो मुह चुम्बी कमलरस पीवमि॥
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ।
मणिकुले बहिआ ओड़िआणे समाअ॥
सासु घरेँ घालि कोञ्चा ताल।
चान्दसुजवेणि पखा फाल॥
भणइ गुण्डरी अम्हे कुन्दुरे वीरा।
नरअ[1] नारी माझेँ उभिल चीरा।

× × ×

त्रिअड्डा[2] चापि योगिनि ! दे अङ्कपाली[3]।
कमलकुलिश घसि करी विकाली॥
योगिनि ! तोहि बिनु खनहु न जाबी।
तोर मुख चूमि कमलरस पीबी॥
क्षेपहुँ योगिनि लेप न जाए।
मणिकुले बहि उड्डीयाने समाए॥
सासु घरे घालि कोँचल (कोँचि) (लगाए)[4] ताल ।।
चान-सूर्य दुइ पक्षा फार (ह)॥

१। सेन—सरअ २। नाड़ीत्रय वा बिन्दुत्रयक अड्डा, योन्यग्र—चगीको (पा० टि०)
३। चगीको—सं० छाया
४। कोञ्चा = कोंचा वा कुंचिका (द्रष्टव्य चगीको—सं० टीका)

भनइ गुण्डरी हमे कुन्दुरे[५] धीर।
नरक नारी (क) माझे उद्धृत चीर॥

हे योगिनि ! सहचरि मानवीशक्ते ! त्रिअङ्गा (त्रिवृत्ता) (योनि) चापि अपन कोरमे बैसाउ, अथवा, हे महतीकुण्डलिनीशक्ते ! अहाँ नाड़ीत्रयकेँ चापि ओहिपर आरूढ़ भए अपन चिह्नस्वरूपता दान करू। कमल-कुलिश वा भग-लिङ्गक घर्षण कए अहाँ हमरा त्रिकाली, कालरहित शक्तिक अभिन्न, बनाउ। हे योगिनि ! भैरवरूपमे हम अहाँक बिनु क्षणो भरि नहि जीबि सकी, अहाँक मुखक चुम्बन कए, ओकरे मधुरस पीबि, हम जीबि रहल छी। उत्क्षेपो भेला पर, योगिनी लिप्ता नहि होथि (स्वाधिष्ठानसँ मूलाधारो गेला पर ओ कुण्डलिनी-शक्ति शुद्धसत्त्वा रहबे करथि)। ओ शक्ति मणिपूरमे बहैत उड्डीयानपीठमे पैसि जाइत छथि। हे शक्ते ! अहाँ सासु श्वासकेँ शरीर-गृहमे घायल कए मणिमूलनिरोधेँ बन्द कए देल। आब चन्द्र-सूर्य (इड़ा-पिङ्गला) दूनूक पक्षकेँ दूर कए मध्य-विकास कराउ। गुण्डरीपाद कहैत छथि—हम कुन्दुरयोगमे (द्वीन्द्रियसंयोगमे) वीर छी, नर-नारी दूनूक मध्य उद्धृत चीर छी (जाहिमे दूनू लीन भए जाए, तेहन सत्त्व, परमात्मरूप भए गेल छी)।

आर्यदेवपाद

१ (३१)

जहि मण इन्दिअ पवण[१] होइ णठा।
ण जानमि अपा कहिँ गइ पइठा॥
अकट करुणाडमरुलि बाजअ।
आजदेव निरासे[२] राजअ[३]॥
चान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ।
चिअ विकरणे तहिँ टलि पइसअ[४]॥
छाड़िअ भय घिण लोआचार।
चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर॥

५। कुन्दुर योग=सामरस्य-योग। द्र० कुन्दुर योग=द्वीन्द्रिय-संयोग—ता० बौ०-सा०सा० पृ० ३२०

१। सेन—इन्दिअवण (छन्द, अर्थछटाक रक्षा) २। सेन—णिराले

३। चर्यीका। शास्त्री, सेन—राजइ (तुकक दृष्टिएँ अनुपयुक्त)

४। चर्यीको। शास्त्री, सेन—पइसइ

आजदेवेँ सअल विआरिउ[५]।
भय घिण दूर[६] निवारिउ॥

× × ×

जहँ मन इन्द्रिय पवन होइ नष्टा।
न जानी आत्मा कहँ गइ पइसा॥
अकट करुणा - डमरू बाजए।
आर्यदेव निराशेँ राजए॥
चन्द्रे चन्द्रकान्त जिमि प्रतिभासए।
चित्त विकरणे तहँ टरि [जा] पइसए॥
छाड़ि भय घृण [ा] लोकाचार।
देखैते देखैते सून विचार॥
आर्यँदेवेँ सकल विचारल।
भय घृण [ा] दूर निवारल॥

जतए मन-इन्द्रिय-प्राणपवन सभ समाप्त भए जाए, ततए आत्मा कतए जा कए पैसल से बुझबामे नहि अबैत अछि। अद्भुत वा अखण्ड करुणामय शिवक डमरू बाजि रहल अछि, आर्यदेव आब सकल आशा-आकांक्षासँ विहीन शोभित भए रहल छथि, विशुद्ध आनन्दमे मग्न छथि, विषय-वासनासँ मुक्त छथि। चन्द्रक सम्पर्कमे जेना चन्द्रकान्तमणि वा चन्द्रिका चकमक लगैत अछि तहिना विकल्पजाल विशुद्ध चित्तक सम्पर्कसँ शुभ्र प्रकाशरूप धारण कए लैत अछि, चित्त जखन चितिक रूपमे विकसित होइत अछि तखन ओकर विकारो चितिलीन भए तद्रूपे भए जाइत अछि। भय-घृणा-लोकाचार आदि (अष्टपाश)केँ छोड़ला पर शून्यस्वरूपिणीक विचरण (वा शून्यक विचार)क अनुभव करैत करैत आर्यदेवसँ सभ रहस्य विचारल गेल। आब हुनकामे भय-घृणादि नहि रहल, सभक निवारण भए गेल।

५। चगीको। शास्त्री, सेन—विहरिउ (अग्रिम पाँतीक तुक नहि बैसए)

६। चगीको। शास्त्री, सेन—दुर (छन्दोभङ्ग, अशुद्धो प्रतीत)

दारिकपाद

१ (३४)

सुन करुण रे[1] अभिनचारेँ काअवाक्चिए[2] ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलेँ ॥
अलक्खलक्खणचित्ता महासुहेँ ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलेँ ॥
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे झाणबखाने ।
अपइठानमहासुहलीलेँ दुलक्ख[3] परमनिवाणे ॥
दुःखेँ सुखेँ एकु करिआ भुञ्जइ इन्दीजानी[4] ।
स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तार माणी[5] ॥
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे[6] रे बाधा ।
लुइपाअपसाएँ दारिक द्वादश भुअणेँ लधा ॥

× × ×

सून - करुण रे ! अभिन्नाचारें कायवाक्चित्ते ।
विलसइ दारिक गगनहिँ पारिमकुलें ॥
अलक्ष्यलक्षणचित्ता महासुखें ।
विलसइ दारिक गगनहिँ पारिमकुलें ॥
की तुअ मन्त्रें की तुअ तन्त्रें की तुअ रे ! ध्यान-बखानें ।
अपइसान - महासुखलीलें दुर्लक्ष्य - परमनिर्वाणे[7] ॥
दुःखसुख एक कए भोगइ इन्द्रिय जानि [इन्द्रियज्ञानी] ।
स्वपरापर न देखइ दारिक सकलानुत्तर मानि ॥
राजा राजा राजा रे ! अवर राज मोहे रे ! बद्ध [।] ।
लुइपादप्रसादें दारिक द्वादश भुवने लब्ध [।] ॥

---

१ । चगीको । शास्त्री, सेन—सुनकरुणरि २ । सेन—चिअ
३ । चगीको । शास्त्री, सेन—दुलख ४ । चगीको, सेन—इन्दी जानी (णी)
५ । चगीको । शास्त्री—सअ ग़ानुत्तरमाणी ६ । चगीको । शास्त्री—मोहेरे
७ । चगीको (सं० छाया)—'निर्वाणं'

अरे ! शून्य-करुणा अर्थात् शक्ति-शिव अभिन्न भए आचरण करैत कायवाक् चित्तमे विलास करैत छथि, शून्यस्वरूपिणीमे, परम कुल (शक्ति)मे (हमर) अलक्ष्यलक्षण चित्त सामरस्यसुखसँ लीन अछि। तोरा मन्त्रसँ की होएतह ? तन्त्रसँ की होएतह ? ध्यान-व्याख्यानसँ की होएतह ? अप्रविश्य महासुखलीलाक सङ्ग दारिकपाद दुर्लक्ष्य परम मोक्षमे लीन भए इन्द्रियक असारतासँ परिचित भए, दुःखसुखकेँ एक बूझि ओकर भोग कए रहल छथि। समस्त जागतिक तत्त्वकेँ अनुत्तर परमशिवक आभासक रूपंमे स्वीकृत कए दारिक आइ स्व-पर-अपर भेदक अनुभव नहि करैत छथि। अरे ! राजा, राजा, राजा—अन्य राजा (साधक-चक्रवर्त्ती) सभ तँ मोहमे जकड़ले रहि गेलाह, मुदा दारिकपाद गुरुलुइपादक प्रसादात् द्वादश भुवनपर विजय प्राप्त कएल, ई बड़ संतोषक विषय।

डोम्बीपाद

१ (१४)

गङ्गा जउना माझेँ रे[1] बहइ नाइ[2]।
तहिँ बुड़िली मातङ्गीपोइआ[3] लीले पार करेइ ॥
बाहतु डोम्बी बाहलो डोम्बी बाटत भइल उछारा।
सद्गुरुपाअपसाएँ[4] जाइब पुणु जिणउरा ॥
पाञ्च केड़ुआल पड़न्तेँ माङ्गे पिठत काच्छी बान्धी।
गअणदुखोलेँ[5] सिञ्चहु पाणी न पइसइ सान्धि ॥
चन्द सूज्ज दुइ चका सिठि संहार पुलिन्दा।
बाम दाहिण दुइ माग न चेवइ बाहतु छन्दा ॥
कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुच्छड़े पार करइ।
जो रथे चड़िला बाहवा ण जा [न] इ[6] कुलेँ कुल बुड़इ ॥

× × ×

गङ्गा यमुना माझे रे ! बहइ नाव ।
तहँ बुड़ली मातङ्गी डोमिनि लीलेँ पार करइ ॥

१। चगीको। शास्त्री—माझेँ रे २। चगीको। शास्त्री—नाई
३। चगीको। शास्त्री—मातङ्गी पोइआ ४। चगीको। शास्त्री—पसाए। सेन—पएँ
५। चगीको—गअण हुखोलेँ। सेन—गअण-दुखोलेँ ६। सेन—जाबाइ

खेबह डोमनि ! खेबह हे डोमिनि ! बाटे भेल उत्सूरा[७] ।
सद्गुरु-पाद-प्रसादेँ जाएब पुनु जिन पु(पु)रा ॥
पाँच करुआरि पड़ैते मागेँ (वा माङि), पीठे कच्छी बान्धि ।
गगन-सेचनीएँ[८] सीँचह[९] (फेकह) पानी, न पइसए सन्धि ॥
चन्द-सूर्या दुइ चकका सृष्टिसंहार-पोलिन्दा[१०] ।
बाम दाहिन दुइ मार्ग न देखिअ खेबह छन्दा ॥
कउड़ो न लेइ, बौड़ी न लेइ, सुछन्देँ पार करइ ।
जे रथ चढ़ला (किन्तु) खेबा न जा (न)इ कुलेँ कुल बुड़इ ॥

गङ्गा-यमुना (इड़ा-पिङ्गला)क मध्यमे हे बालयोगिन् ! ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्नास्थ सूक्ष्म नाड़ी) एक प्राणवाहक नौका बहि रहल अछि। ओहि स्थानमे अन्तःस्था महाविद्या-शक्ति वा चाण्डलिनी (मातङ्गी = चाण्डालिनी[११]) मातङ्गीरूपा डोमिनी (पोइआ = नीच स्त्री[१२]) (शरीरक निम्न प्रान्तसँ उठनिहारि शक्ति चण्डाली वा) कुण्डलिनी अपन लीला देखाए साधकपुत्रसकलकेँ ऊर्ध्वगामी (पारगामी) बनबैत छथि। हे डोमिनि ! महामुद्रे ! प्राणनौकाकेँ, चित्त-नौकाकेँ खेबह, बाटमे आब जीवनक साँझ भेल जाइत अछि, सद्गुरु-चरण-प्रसादेँ पुनः जिनपुर (परलोक) जेबाक अछि, पञ्च-उपदेशरूप कर्णधार मार्गमे वा माङिपर रखैत, पीठमे कच्छी (वा रस्सी) बान्हि शून्यरूप सेचनीसँ नौकास्थ जलकेँ उपछि फेकह, जाहिसँ ओ जल मध्यनाड़ी (नाड़ी-हृदय-सन्धि)मे पैसए नहि (अर्थात् विषयवासना प्राण-नौका वा चित्त-नौकामे अँटकि नहि सकए, से देखह, अबितहिँ उपछि फेकह)। चन्द्र-सूर्य-मण्डल-चक्र दूनू सृष्टि-संहारक प्रतीक, ओहि नौकाक मध्यस्थ दुइ गोट मस्तूल (वा खुट्टी थिक) ताहि प्रकारेँ प्राण-वाहमे लीन हुअह जेँ एहि दूनू चक्र- सम्बन्धी (इड़ा-पिङ्गला रूप) दूनू मार्ग दिशि ध्यान नहि जा सकह। हे बालयोगिन् ! तेहन व्यक्ति, महामुद्रा (ऊपर सम्बोधिता) पार करओनिहारि छथून्ह जे आनन्दे आनन्द,

---

७। उत्सूरः—Evening Twilight-आप्टे सं० श० को० P. 103 तथा चगीको पा०टि०
८। दुञोल—सेचनी [चगीको—एहीं गीतक पा० टि०] ९। चगीको—सं० छायामे 'उदंचय', 'सिंच' दूनू समानार्थक [उपछब अर्थ मे]; सिंच = सीँचह [मै० रूप]
१०। पुलिन्दा—पोलिन्दा, द्रष्टव्य चगीको ओएह गीत पा० टि० तथा आप्टे सं० शब्द-कोश P. 349 'पोलिन्द' शब्द = मस्तूल। ११। सं० शब्दकोश पृ० ४ ३ [द्र० बौद्धक 'चराडाली'] १२। चगीको—ओएह गीत—पा० टि०

हुनका हेतु एकोटा कौड़ी–बौड़ी पारिश्रमिक खर्च नहि करबाक काज। ओ मातङ्गी-शक्ति महाविद्या स्वच्छन्द भए आनन्दसँ पार करैत आएल छथि। एहि प्रकारँ पारगमन करबाक हेतु जे एहि चित्त–प्राण–नौकापर सवार होएताह, किन्तु ओकर वाहसँ परिचित नहि रहताह, से देह–देहहिमे[१३] डूबि जएताह वा (जेना 'कूल' मानि कहल गेल) इतस्ततः तटहिपर डूबि जएताह[१४]।

कुक्कुरीपाद

१ (२)

दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ[१]।
रुखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ॥
आङ्गन घरपण[२] सुन भो बिआती।
कानेट चौरे निल अधराती॥
सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ।
कानेट चोरे निल का गइ[न] मागअ॥
दिवसइ बहुड़ी काड़इ[३] डरे भाअ।
राति भइले कामरु जाअ॥
अइसन चर्य्या कुक्कुरीपाएँ गाइड़।
कोड़ि मझेँ एकु हिअहि समाइड़॥

× × ×

दुली दूहि पीठ धारण न जाए।
रुहक (वृक्षक) तेतरि कुम्भीर खाए॥
आङन घरपन (गृहापन्न) सुन हे बिआती (प्रसूती)!
कानेट (कर्णफूल) चौरे लेल अधराती॥
ससुरा निंद गेल बहुरी जागए।
कानेट चोरे लेल का गति माङए॥
दिवसे बहुरी काड़ [काड़ कौआ] क डरे भागए।
राति भेने कामरु जाए॥

१३। सं० टी० तथा आओर द्रष्टव्य 'देहेऽपि कथितं कुलं ...' ल० स० पृ० ५३०
१४। चगीको पृ० ४६ पा० टि०
१। चगीको। शास्त्री, सेन—जाइ। २। सेन—घरपण ३। चगीको, सेन—काउइ

अइसन चर्या कुक्कुरीपादें गाआल ।
कोटि माझे एक हिअहि न समाएल ॥

दुली शब्दक दू अर्थ—कच्छपी[४] आ द्वयाकार, लीन होएबाक स्थान 'महा-सुखकमल'[५] वा सहस्रार, वस्तुतः कच्छपीअहुकें घेंट बाहर-भीतरक दृष्टिएँ द्वयकार कहि सकैत छी। अस्तु। प्रथम पंक्तिक तात्पर्य एतबे अछि जे सहस्रारक अमृत दूहि (दूनूक मध्य सामरस्य स्थापित कए मिथुनामृतज्ञान दूहि) पुनः ओकरा मणिपीठमे धारण नहि कएल जाए सकैत अछि (कुण्डलिनी-उत्थान द्वारा सामरस्य-मुक्तिक पश्चात् प्रत्यावर्त्तनक प्रश्न नहि उठैत अछि)। काय-वृत्तक वक्र आ' अम्मत तेतरि सदृश (कु) चित्तकें, कुंभीर जन्तु वा कुम्भक प्राणायाम खा लैत अछि। हे जगत्-प्रसूति महामुद्रे ! सुनह, अर्धरात्रिमे (कुण्डलिनी-उत्थान-कालमे) कर्णाभरण (कर्ण द्वारा ग्राह्य नाद-पवन) सामरस्य चोरा लेलक, ससुर सदृश त्वरितादि श्वास अवरुद्ध (निद्रित) भए गेल, बधू-सदृश योगिनीगण जागलि रहए। जखन कर्णाभरण नाद-पवन चोरे लए लेलक, तखन पुनः ककरासँ माङब ? दिनमे वधू काड (काड़कौअहु)सँ डेराए जाइत छथि, राति भेने प्रियतमकें कामरु पहुँचबैत छथिन्ह वा कामरूप जाइत छथि (कामसाधनार्थ) अर्थात् प्राणक आरोहक क्रममे कुण्डलिनी-महामुद्रा कालपुरुषसँ त्रस्त रहथि, किन्तु सहस्रारस्थ भए पुनः शिव-संयोगमे उन्मुखी होथि। एहन चर्या कुक्कुरीपाद गबैत छथि, कोटिमे एकहुक हृदयमे ई रहस्य पैसल नहि।

२ (२०)

हाँउ निरासी खमण भतारे[१]।
मोहोर विगोआ कहण न जाइ ॥
फेटलिउ गो माए अन्तउरि चाहि।
जा एथु चाहाम सो एथु नाहि ॥
पहिल विआण मोर वासनपूडा।
नाडि विआरन्ते सेव बापूडा ॥

४। दुली—कच्छपी—सं० शब्दकोश
५। द्वयाकारं यस्मिन लीनं गतं महासुखकमलं दुलि इति संध्यासंकेते बोद्धव्यं। चगीको सं० टी०

१। चगीको, सेन। शास्त्री—भतारि

जाणजौवण मोर भइलेसि पूरा।
मूल निखणि[१] बाप संघारा॥
भणथि कुक्कुरीपा ए भव थिरा।
जो एथु बुझइ सो एथु वीरा॥

× × ×

हम निरासी खमन भतारे।
हमर विगोप्ता कहल न जाइ॥
फाड़ल गे माए! अन्तः पुरी देखि।
जे एत देखी से एत नाहि॥
पहिल बिआन मोर वासनापुर (?)।
नाड़ी विचारैते सेहो बेचारा॥
जान यौवन मोर भेल पूरा।
मूल खोधि बाप संहारा॥
भनथि कुक्कुरीपा ई भव थीरा।
जे एत बुझइ से एत वीरा॥

हम (भगवती महामुद्रा) व्यापक परब्रह्मस्वरूपिणी रहबाक कारणेँ निरासक्ति छी, शून्यस्वरूप मन वा चित् (चित्तो तँ चित् बनि जाइत अछि) हमर भर्त्ता, स्वतः हम चिच्छक्ति वा चिति। हमर पालयिता के से कहल नहि जाए। गे मैया! हम अन्तःपुर (साधकक चित्त-जगत्) दिशि ताकि ओकर विषय-वासनाकेँ तोड़ि देल। जेना अहाँ एहि जगतकेँ देखैत छी, तेना अछि नहि, अर्थात् असत् अछि बाह्यतः एवं सत् अछि मूला शक्तिक आभास होएबाक कारणेँ। हमर पहिल बिआनमे वासनानगरी ई देह प्रसूत भेल, नाड़ी सभपर विचार कएला सँ वासनानगरी देहो दयनीये। ज्ञान-यौवन वा उद्दाम यौवन हमर पूर भेल, चितिरुपमे (ब्रह्म-) मूलमे पैसि ओकरा चिन्हल, वासनादिजनक चित्ताक संहार (विनाश) कएल। कुक्करीपा कहैत छथि— ई जगत् स्थिरे अछि, जे ई रहस्य नीक जकाँ बुझैत अछि से वीर अछि (जगत् स्थिर, स्थिरा नित्याक आभास होएबाक कारणेँ)।

एहिठाम महामुद्राक उक्ति अछि वा कविक, से समस्त गीतमे सुस्पष्ट नहि अछि। ई अनुसन्धान किछु उपयुक्त प्रतीत होइत अछि जे अन्तिम चारू

१। चगोको। शास्त्री, सेन—नखलि।

पंक्ति कविक उक्ति अछि, अवशिष्ट महामुद्राक। किन्तु, अधिक समीचीन बुझना जाइत अछि ई अनुमान जे समग्र गीत कविक अभिन्ना प्राणशक्तिक उक्ति थिक, तेँ "मूल .... संघारा'। वस्तुतः सिद्धपाद चित्ततरुक संहार कएल, किन्तु हुनक अभिन्नारूपमे शक्तिओ तेना बाजि सकैत छथि।

३ (४८)[1]

कुलिशाब्जयुद्धं प्रविष्टाः।
समतायोगस्य सैनिकसमूहाः॥ १ ॥
विषयेन्द्रियग्रामानहन्।
शून्यताराजो महासुखनामा॥ ध्रुवपद ॥
तूर्यशब्दः शङ्खध्वनिर् अप्रतिहतनादं नदति।
मोहभवबलानि दूरातीतानि॥ २ ॥
सुखपुरं शिखरे संस्थाप्य सर्वम् आकृष्टं [संगृहीतं वा]।
अंगुलिम् ऊर्ध्वं क्षिप्त्वा कुक्कुरीपादो वदति॥ ३ ॥
अयं त्रैलोक्ये महासुखेन जयति।
तत्त्वस्यार्थं शब्दान्तरेण कुक्कुरीपादेन कथितं॥ ४ ॥

× × ×

कुलिश - कमल - युद्ध पसल।
समतायोगक सैनिक समूह॥ १ ॥
विषयेन्द्रिय - ग्राम माग्ल।
शून्यताराज महासुखनामा॥ ध्रुवपद ॥
तूर्य शब्द शङ्खध्वनि अप्रतिहतनाद बाजए।
मोहभवबल दूर बीतल॥ २ ॥
सुखपुर शिखरे राखि सभ आकृष्ट (संगृहीत) (भेल)।
अङ्गुलि उठाए कुककुरीपाद कहथि॥ ३ ॥
एहि त्रैलोकये महासुखेँ जय हो।
तत्त्वक अर्थं शब्दान्तरेँ कुककुरीपादेँ कथित हो॥ ४ ॥

१। "The Caryā with its commentary, lost in its original form, has been retranslated here from the Tib. version appended at the end of the work." बगीको—पा० टि० (पृ० १५७)

वज्र (लिङ्ग वा शिवक प्रतीक)आ' कमल (योनि वा शक्तिक प्रतीक) एहि दूनूक सामरस्ययोगमे समस्त काय, वाक् चित्त तत्पर भए गेल। शिव-शक्तिक सामरस्यक बलसँ विषयग्राहक इन्द्रियसभक व्यापार नष्ट कए देल गेल। तुरीयनाद, विजयक शङ्खध्वनि जकाँ, अप्रतिहतरूपमे झङ्कृत भए रहल अछि। आब संसारक सामर्थ्य, मोहमायाक पराक्रम दूर चल गेल, आब समस्त विषय-वासनासभ सहस्रार (मेरुशिखर) पर, सामरस्यक भूमिकामे, अन्तर्लीन भए गेल, सभ वासना ओही चक्रमे आकृष्ट भए विलीन भए गेल। आङुर उठाए कुक्कुरीपाद कहैत छथि—त्रैलोक्यक आभास-दोषसभ सामरस्यसँ जितल भए गेल। ओ एहि सामरस्यानन्दक जयकार करैत छथि, एहि सङ्ग रहलासँ त्रैलोक्यो श्रेयस्कर। ओ (कुक्कुरीपाद) तत्त्वहिक विषयकेँ दोसर शब्दमे (अपन ढङ्गसँ) कहैत छथि।

भुसुकुपाद

१ (६)

काहेरे घिणि मेलि अच्छहु कीस।
वेटि(ढ़ि)ल हाक पड़अ चौदीस॥
अपणा मांसेँ हरिणा बैरी।
खनह न छाड़अ भुसुक अहेरि (री)॥
तिन न च्छुपइ हरिणा पिबइ न पानी।
हरिणा हरिणीर निलअ न जानी॥
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तो।
ए वण च्छाड़ी होहु भान्तो॥
तरंगते[1] हरिणार खुर न दीसइ[2]।
भुसुकु भणइ मूढ़हिअहि न पइसइ॥

× × ×

काहि घिनि मीलि रहू कीदश।
वेढ़ल हाक पड़ए चहु दीस॥
अपना मांसे हरिणा बैरी।
खनहु न छाड़ए भुसुकु अहेरी (आखेट)॥

१। चगीको, सेन—तरङ्गँन्ते २। चगीको। शास्त्री, सेन—दीसअ

तृण न छुबइ हरिणा पिबइ न पानी ।
हरिणा हरिणीक निलय न जानी (आनइ ॥
हरिणी बोलए सुन हरिणा तों ।
ऐ वन छाड़ि होहु भ्रान्तो ॥
तरङ्गमे हरिणाक खुर न देखो ।
भुसुकु भनइ मूढ़-हिअहि न पैसइ॥

ककरा (कोन तत्त्वकें) पकड़ू, ककरा घृणाक दृष्टिएँ देखि छोड़ू? किछु नहि फुरैत अछि। हम केवल क्षुब्ध छी, चारू कात विषय-वासनासँ घेरल छी, बूझि पड़ैत अछि, विषयसभ मूर्तिमान् भए जोर-जोरसँ बाजि रहल अछि— एकर आत्मा कें मारह (नष्ट करह)। हमर चित्त-हरिण अपन हानि, अपनहि मांसक लोभमे पड़ि अर्थात् वासना-पूर्त्तिक लोभमे पड़ि, कए रहल अछि, तें अपन शत्रु अपने अछि, वासनापूर्त्तिक लोभमे रहने चित्तक विकास संभव नहि। किन्तु भुसुकुपादक आत्मा ओकर जान नहि छोड़त, ओ ओकर दोष-विनाशपर लागल अछि; महती शक्ति निराकारब्रह्ममयीशक्तिरूपमे हरिणीक सदृश छथि। एहि हरिणीकें अपन प्रियतम सिद्धक चित्तहरिणक व्याकुलता देखल नहि जाइत छन्हि, ओ बुझैत छथि जे हमर चित्त-हरिण सामान्य हरिण नहि जे खढ़-पातक आहार करैत अछि आ' स्थूल जलसँ अपनाकें परितृप्त कए सकैत अछि, किन्तु ओ हरिण अपन परिचय नहि रखैत अछि। ओ शून्यहृदया जगदम्बाक अधिष्ठानसँ अनभिज्ञ अछि, जे ओकरासँ दूर नहि छथि। ई स्थिति देखि ओ शून्यस्वरूपिणी जगन्मयी ओकरा कहैत छथिन्ह–हे साधकक चित्त हरिण ! हे हमर प्रियतम ! सुनह, तों आब एहि विषयवासनाक जंगल-झाड़मे अपनाकें नहि ओझराबह, एतएसँ निकलि चलह, चलह, हमरा सङ्ग सहस्रारवनमे विचरह। तात्पर्य एतबे जे चित्त ऊपर ऊठि, विकसित भए, चितिक अभिन्न बनि, शिवरूप बनि जाए। जगदम्बा चितिरूपा छथि, चित्त विकसित भेलापर चितिक अभिन्न बनि जाइत अछि आ' फलतः साधकक आत्मा, शिवात्माक पदवी प्राप्त करैत अछि। एहि प्रक्रियाकें ध्यानमे राखि चिति अपरिणामिनीशक्ति साधकक मनकें अपनामे रमाए, अपन अभिन्न बनाए, सहस्रारस्थ शिवरूपमे परिणत देखए चाहैत छथि।

अस्तु, ई आशय सिद्धक चित्तकें जखन बुझबाक योग्य भए गेलैक तखन ओ बड़ बेगसँ विषयसँ भागल आ' महती शक्तिक अभिन्न (अन्तरङ्ग) बनि शिवरूपताकें प्राप्त कएलक। कोना ? से रहस्य तँ मूढ़क हृदयमे पैसि नहि सकैत अछि, भुसुकुपादक सएह धारणा छन्हि।

२ (२१)

निसि अन्धारी मुसअ चारा ।
अमिअभखअ मुसा करअ आहारा ॥
मार रे जोइआ मुसा पवणा ।
जेण तुटअ अवणागवणा ॥
भवविन्दारअ मुसा खणअ गाती ।
चञ्चल मुसा कलिआँ नाशक थाती ॥
काल मुसा उह ण बाण ।
गअणे उठि करअ अमिअ पाण[1] ॥
ताब से मुसा उञ्चल पाञ्चल ।
सद्‌गुरुबोहे करह सो निच्चल ॥
जबेँ मुसाएर चार तुटअ ।
भुसुकु भणअ तबेँ बान्धन फिटअ ॥

× × ×

निशि अन्हारी मूषक चारा ।
अमृत-भक्षक मूसा करए आहारा ॥
मार रे ! योगिआ मूसा पवना ।
जहिसँ टूटए आवागमना ॥
भव-विदारक मूसा खुनए गर्त्ती ।
चञ्चल मूसा खाए (कओरें) थाती ॥
काल मूसा, तनि न वर्ण ।
गगने ऊठि करए अमृतपान ॥
तावत् से मूसा उकस-पाकस [चञ्चल] ।
सद्‌गुरुबोधेँ करह सोइ निश्चल ॥
जबे मूसाकेर चार टूटए ।
भुसुकु भनए तबे बन्धन टूटए ॥

चित्त-मूस चतुर्थ प्रहरान्तमे, अर्थात् प्राणवायुरूप सूर्यक अस्त भेलापर [षट्चक्रयोगक क्रममे] चरैत चरैत सहस्रारस्थ मधुक पान करैत अछि। किन्तु

1. चगीको। शास्त्री, संन—चरअ अमण धाण

एहि यौगिक प्रक्रियामे स्थायित्व नहि, अर्थात् स्थायी रूपमे अमृत-पान करबाक हेतु, सामरस्य-सुख भोग करबाक हेतु, कुचित्त-विनाश आवश्यक। एही विषयकेँ सिद्धगण चित्त-विनाश शब्देँ सूचित कएने छथि। आ' एही दृष्टिएँ प्रस्तुत सिद्ध कवि बालयोगीसभकेँ प्राण-पवन वा चित्त मूसकेँ मारए कहैत छथि। विषयवासनासँ मलिन चित्तक विनाशहिसँ वा तदभिन्न प्राणक नाशहिसँ सामरस्य-मुक्ति सम्भव, जन्म-मरणक विच्छेद सम्भव। कवि कहैत छथि—ई जे विषयानुरक्त चित्त से यद्यपि षट्चक्र-साधन द्वारा क्षणक हेतु सामरस्यक ईषद्भोग करैत अछि, किन्तु सामान्यतया पुनः विषयमे लपटाए अपनहिसँ खाधि कोड़ैत अछि; वस्तुतः ओ थिक भव-विदारक, किन्तु लागल रहैत अछि खाधि कोड़बामे, अपन पतनक आयासमे। चञ्चल रहि चित्त-मूस नाशक भण्डार विषयवाषसनाक भोग करैत अछि, आहार करैत अछि, किन्तु ओएह स्थिर भए, समाधिस्थ भए, महाकालरूप भए जाइत अछि, जकर कोनो वर्ण-स्वरूप नहि, ताहि रूपमे तँ ओ शून्यगगनमे विचरण करैत अछि आ' सामरस्यक अमृतपान करैत अछि, शक्तिक अन्तरङ्ग बनि। जा' धरि ई स्थिरता नहि आएल रहैत अछि ता'धरि ओकर छटपटी कहल नहि जाए, ओ मानू उकस-पाकस करैत अछि। एहि छटपटीकेँ कोना दूर कएल जाए, सामरस्यक आनन्द कोना भेटए, चित्त ब्रह्ममयीमे लीन भए शिवरूपताकेँ कोना पावए? एहिसभक व्यावहारिक रहस्य सद्गुरुअहिसँ ज्ञातव्य। संक्षेपमे एतबे बुझह [हे बालयोगिन्] जे जखन एहि चित्त-मूसक संचार [ऊपर उठब, पुनः नीचा खसब] रुकि जएतह, तखन समस्त बन्धन टूटि जेतह।

३ (२३)

जइ तुम्हे भुसुकु अहेरि जाइबेँ मारिहसि पञ्चजणा।
नलिणीवन पइसन्ते होहिसि एकुमणा॥
जीवन्ते भेला विहाण[१] मएल रअणि।
[ग]हण[२] विणुमाँसे भुसुकु पद्मवण पइसहि णि॥
माआजाल पसरि उरे[३] बाँधेलि[४] माआहरिणी।
सद्गुरुबोहेँ बुझि रे कासु कहिनि[५]॥

१। चगाको। शास्त्री, सेन—विहाँखि २। चगीको। शास्त्री, सेन—हण
३। चगीका, सेन—रसरिउ रे ४। चगीको। शास्त्री—बधेलि
५। चगीको। शास्त्री, सेन—कदिनि

× × ×

जं तों भुसुकु आखेट जएबह, मारिहह पञ्चजना ।
नलिनीवन पैसैते होइहह एकमना ॥
जीवित भेळा बिहान, मुइल रजनी ।
[ग्र] हण बिनु मांसे भुसुकु पद्मवन पैसिहह नहि ॥
मायाजाल पसरि उरे बाँधलि मायाहरिणी ।
सद्गुरुबोधें बुझल रे ! [का] ककर कहिनी ॥

हे भुसुक ! जँ तोँ कुचित्तक आखेटार्थ जइहह तँ शब्दस्पर्शादि पञ्चतन्मात्रा आ तत्सम्पर्की पञ्च-अनुभूतिक विनाश पहिने कए लिहह, सहस्रारदल-प्रवेशसँ पूर्व एकमना भए आराध्यक अन्तरङ्ग बनि जइहह, तखन कोनो गप्प। आब तोहरा ज्ञानोदय भए गेलह, अज्ञान-निशा समाप्त भए गेलह। निहत चित्त-मृगक मांस उपहार लए अर्थात् कुचित्त-विनाश कए ओकर मूलभूता शक्तिक सङ्ग हे भुसुकु ! तोँ सहस्रार पैसिहह, प्राणवायुकेँ षट्चक्र -भेद करैत-करैत सहस्रारमे मिलबिहह। संसारक मायाजाल पसरल अछि। एहि जालमे ओझराए साधक महामाया-हरिणीकेँ पर्यन्त सीमित दृष्टिएँ हृदयमे रखैत छथि, रूप-कल्पना द्वारा स्वार्थवशात्। सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ हमरा ई बुझबाक योग्य भए गेल अछि जे कनिक की स्थिति छल। कहबाक अभिप्राय ई जे संसारक विषयवासनाक रूपमे मायाजाल पसरल अछि, ताहिमे नहि फँसि, चिच्छक्तिक सङ्ग अन्तरङ्गता स्थापत कएल जाए, सएह थिक चरम लक्ष्य ।

४ (२७)

अधराति भर कमल विकसिउ।
बतिस जोइणी तसु अङ्ग उह्लसिउ[1] ॥
चालिअ ससहर[2] मागे अवधूइ।
रअणहु सहजे कहेइ ॥
चालिअ ससहर गउ णिवाणे।
कमलिनि कमल वहइ पणालें ॥
विरमानन्द विलक्षण सुध।
जो एथु बुझइ सो एथु बुध ॥

१। चर्गोको। शास्त्री, सेन—उह्रसिउ २। चर्गोको। शास्त्री, सेन—षषहर

भुसुकु भणइ मइ बुझिअ मेलें ।
सहजानन्द महासुह लीलें ॥

× × ×

अधराति भरि कमल विकसल ।
बत्तीस योगिनी तसु अङ्ग उल्लसल ॥
चालित शशधर मार्गे अवधूती ।
रतनहु सहजे कहइ (अजगूत) ॥
चालित शशधर गेल निर्वाणे ।
कमलिनि कमल बहइ प्रनालें ॥
विरमानन्द विलक्षण शुद्ध ।
जे एत (ए) बुझइ से एत (ए) बुद्ध ॥
भुसुकु भनइ हम बुझल मेलें ।
सहजानन्द महासुखलीलें ॥

चतुर्थान्त प्रहर (चतुर्थी सन्ध्या) मे, अर्थात् प्राणसूर्यक अस्तमित भेलापर सहस्रार विकसित भेल (अथवा निशामे जाए सहस्रार विकसित भेल)। योगिनीक सदृश,महाविद्याक सङ्ग सामीप्यभाव अगओनिहारि देवीक सदृश, बत्तीसो नाड़ी ओहि सहस्रारक अङ्गकेँ उल्लसित कएलक,आनन्दोत्फुल्ल कएलक । प्राणचन्द्र अवधूती वा सुषुम्ना नाड़ीमे ऊपर उठए लागल आ' सहज वा सामरस्यक अनुभूति-रत्नक परिचय हमरा कहए लागल, अर्थात् हमरा ओ अनुभव होअए लागल। समुत्थित ई प्राण-चन्द्र वा चित्त-चन्द्र निर्वाणप्राप्त भेल अर्थात् मुक्त भए गेल, कमलिनी अर्थात् कुण्डलिनी वा प्राणशक्ति सहस्रार-कमलमे प्रवेश कएल, प्रकृष्ट ब्रह्मनाड़ी द्वारा। तखनुक आनन्द विलक्षण तथा विशुद्ध सच्चिन्मय। जे एतए ई रहस्य बुझए सएह अछि प्रबुद्ध। हमहुँ तँ जीव (प्राण)-आत्मा (परमात्मा)क मेलक वा शक्ति-शिवक संयोगहिक, सहज सामरस्यहिक, प्रसादात् एहि रहस्यसँ परिचित भेल छी। अर्थात् बिनु ओहि सामरस्यानुभूतिक आनन्दक साक्षात् अनुभव प्राप्त भेने ई संभव नहि अछि (एहिठाम जीवन्मुक्तिपर प्रकाश अछि)।

५ (३०)

करुणा मेह निरन्तर फरिआ।
भावाभाव द्वन्दल दलिआ॥
उइत्ता गअण माझेँ अदभूआ।
पेख रे भुसुकु सहजसरुआ॥
जासु सुनन्ते तुट्टइ इन्दिआल।
निहुए[1] णिअ मन देअ[2] उलास॥
विसअ विशुद्धेँ मइ बुझिअ आनन्दे।
गअणह जिमि उजोलि चान्दे॥
ए तैलोए एत वि सारा[3]।
जोइ भुसुकु फेटइ अन्धकारा॥

× × ×

करुणा मेघ निरन्तर फरए।
भावाभाव द्वन्द्वल दलए॥
उदित गगन माझे अद्भुता।
पेख रे! भुसुकु सहजस्वरूपा॥
जसु सुनइते टूटइ इन्द्रियजाल (इन्द्रजाल)।
निभृत निज मन दिअए उल्लास॥
विषय विशुद्धेँ हम बुझी आनन्दे।
गगने जिमि इजोरि चन्दे॥
ऐ त्रैलोक्ये एते विसारा।
योगि भुसुकु फाड़इ अन्धकारा॥

परमा सत्ताक भाव वा अभाव, एहन विकल्पकेँ दलित कए, हृदयमे करुणा-मेघक उत्पत्ति भेल अर्थात् शिवक करुणामय स्वरूपक स्फुरण भेल। शून्य-गगनमे अद्भुत सहज-स्वरूप-प्रकाशक उदय भेल, एहन प्रतीत भेल। अर्थात् शून्य-स्वरूपिणी शक्तिक सङ्ग सम्मिलित शिवक सामरस्यमय स्वरूपक वा विमर्श-सम्मिलित-प्रकाशक साक्षात्कार भेल। हे भुसुकु! एहि स्वरूपकेँ

१। चगोको। शास्त्री, सेन—निहुरे
२। चगोको। शास्त्री, सेन—दे
३। चगोको। शास्त्री—ए त विसारा। सेन—एतवि षारा

नीक जकाँ देखह, चिन्हह। ओ तँ एहन प्रकाश अछि जकर वर्णन सुनलासँ इन्द्रियजाल वा मायाजाल टूटि जएतह, आ' मन निभृत भए जेतह, अनायास उल्लसितो। विषय-वासना आब शुद्ध सत् आनन्दरूपमे परिणत भेल अछि, कोना लगैत अछि तँ जेना आकाशमे चन्द्रोदय भए गेल हो, चन्द्रमाक इजोरिया जकाँ ओहि असीम परमशिवक सहज-प्रकाश चित्त-जगतकेँ व्याप्त कएने अछि। एतेक तँ कहल, मुदा एहि त्रैलोक्यक मायाजालमे पड़ि लोक सभ किछु बिसरि जाइत अछि, किन्तु भुसुकु अज्ञान-तिमिरकेँ फाड़ि देल, तत्त्वज्ञानी बनि गेलाह।

६ (४१)

आइए अणुअना ए जग रे भांतिएँ सो पड़िहाइ।
राजसाप देखि जो चमकिइ साँचे कि ताक बोड़ो खाइ॥
अकट जोइआ रे मा कर हाथ[1] लोह्ला।
आइस[2] सभावेँ जइ जग बुझसि तुटइ वासना[3] तोरा॥
मरुमरीचि गन्ध[ब]नअरी[4] दापणपतिबिम्बु जइसा।
वातावत्तोँ सो दिढ़ भइआ अपेँ पाथर जइसा॥
बान्धिसुआ जिम केलि करइ खेलइ बहुबिह खेला।
बालुआतेलेँ ससर सिंगे आकाशफुलिला॥
राउतु भणइ कट भुसुकु भणइ कट सअला अइस सहाव।
जइ तो मूढ़ा अच्छसि भान्ती पुच्छतु सद्गुरुपाव॥

× × ×

आदि [मे] अनुत्पन्न [।] ई जग रे! भ्रान्तिएँ से प्रतिभाति।
रज्जु-साप देखि जे चमकइ सत्ये कि ताक बोड़ो खाइ?
अकट योगिआ रे न कर हाथ नोनाह।
अइसन स्वभावेँ यदि जग बुझसि टुटए वासना तोरा॥
मरुमरीचि गन्ध[र्व]नगरी दर्पण प्रतिबिम्ब जइसन।
वातावर्त्तेँ से दृढ़ भेला अपेँ पाथर जइसन॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—हथा २। चगीको, सेन। शास्त्री—अइस
३। चगीको। शास्त्री, सेन—वाषणा ४। चगीको। शास्त्री—गन्धनइरी

बन्ध्या सुता जिमि केलि करइ खेलइ बहुविह खेला ।
बालुका तेलें शशक सिंघे आकाश फुलएला ॥
राउत भनइ ओह ! भुसुकु भनइ ओह ! सकला अइसन स्वभाव ।
यदि तों मूढ़ा छह [तों] भ्रान्त [ी] पुछह सद्गुरुपाद ॥

हे बालयोगिन ! वस्तुतः आदिमे जे अनुत्पन्न छल एहन जगतकें भ्रान्तिक कारणे तों यथार्थ बूझि स्वीकार करैत छह। तोहरा असत्य जगत् सत्य प्रतिभासित होइत छह, भ्रमक कारणें। किन्तु बुझह जे रज्जुसर्प देखि जे डरें चौंकि उठैत छथि तनिका वस्तुतः ओ साप खाए तँ नहि लैत अछि। मिथ्या धारणा मात्र रहैत अछि जे ओ साप खा लेत, तहिना एहि जगतकें यथार्थ मानि निरन्तर भीति-दुःखसँ व्याकुल रहब भ्रममात्रक परिणाम थिक। एहि जगतसँ किछु होबएबाला नहि, एकर डर की ? ई अकट गप हम कहैत छिअह। एहि भवसागरक द्वार विषय-जलकें स्पर्शो नहि करह, केवल हाथ [मन] कें नोनछराइन, विषयी, करब होएतह। ई भवसागर किछु नहि सत्ता रखैत अछि, विच्छक्किक आचरणरूप माया मात्र थिक। एहि रूपमे जँ तों संसारकें स्वीकार करबह, तँ अनायास विषय-वासना टूटि जएतह। ई बुझह जे ई संसार तहिना किछु काजक नहि जेना मरुभूमिमे पानि पीबाक इच्छा केवल कष्टकारके, ई कपोलकल्पित सुखदुःखमय संसार तहिना मिथ्या जेना आकाशमे गन्धर्वनगरी बसल, अथवा जेना दर्पणमे प्रतिबिम्बित वस्तु [वस्तु भासित होइत, किन्तु वस्तु नहि, छाया-प्रतिबिम्ब मात्र]। ई जगत् परमा सत्ताक आभास मात्र, छाया मात्र, वस्तुतः अपनामे ई किछु नहि, इएह आशय। वाता-वर्त्तमे पड़ल पाथर कहिओ स्थिर भेल ? बन्ध्याक पुत्री कहिओ जन्म लए खेलाएल ? बालुसँ कहिओ तेल बनल ? खढ़ियाकें कहिओ सिंघ उपजलैक ? आकाशमे कहिओ कोनो फूल फुलाएल ? एहि सभ प्रश्नक उत्तर एकेटा होएत—कहिओ नहि। तहिना ई जगत् कहिओ यथार्थ तत्त्वक रूपमे उत्पन्न भेल, से नहि। राउत (सिद्ध राजकुमार) ई अद्भुत विषय कहैत छथून्ह, भुसुकु ई अद्भुत विषय कहैत छथून्ह जे सभ जातिक विषयकें, वस्तुकें, एही रूपमे बुझह। तथापि जँ तों मूढ़े छह तँ कोनहु सद्गुरुसँ सत्यक जिज्ञासा करह।

७ (४२)

सहजमहातरु फरिअ ए तेलोए।
खसमसभावे रे वाणत मुका कोए[1] ॥
जिम जले पाणिआ टलिआ भेड़ न जाअ।
तिम मणरअणा रे समरसे गअण समाअ ॥
जासु नाहि अप्पा तासु परेला काहि।
आइ अनुअणा रे जामरण भाव नाहि ॥
भुसुकु भणइ कट राउतु भणइ कट सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिँ भावाभाव ॥

× × ×

सहज महातरु फरए रे! त्रैलोक्ये।
खसम-स्वभावेँ रे! वानतः मुक्ता कोए॥
जिमि जले पानिआ खसि भेद न जाए।
तिमि मनरतना रे! समरसे गगन समाए॥
जसु नाहि आत्मा तसु परक काहि।
आदि अनुत्पन्ना रे! जन्ममरण-भाव नाहि॥
भुसुकु भनइ कृत, राउत भनइ कृत, सकला (इ) एह स्वभाव।
जाइ न आवइ रे! न तहँ भावाभाव॥

हे बालयोगिन्! एहि समस्त त्रैलोक्यमे एक सहजरूप, सामरस्यमय शिव-शक्तिक अद्वयरूप, महान् वृक्ष जकाँ पसरल अछि, ओही महान् वृक्षक मिथुनक फलरूप थिक ई यावतो सृष्टि, मायाजाल। ओ आकाशसदृश स्वभावे, शून्यता-स्वभावे, गगनहृदयस्वभावे, तँ स्वातन्त्र्य वा विमर्शशक्ति थिक परमात्मा वा परमशिवाद्वैतक एहि शक्तिकेँ, परमात्माक स्वभाव (विमर्शहि स्वभावे) केँ पकड़लासँ मुक्ति भेटब सुनिश्चित, किन्तु दौर्भाग्यवशात् बड़ थोड़ व्यक्ति तत्त्वज्ञानी भए सकलाह, अधिकांश ज्ञानविहीन उपासना वा धार्मिक अन्य चर्या कए बन्धनग्रस्ते रहलाह। जेना जलाशयमे एक लोटा जल देलासँ व्यापक-व्याप्य जलक भेद नहि अनुभूत हो, तहिना मनोरत्न सामरस्यपूर्ण शून्य-स्वरूप शिव-शक्तिमे मीलि (पैसि) गेलासँ तद्रूपे भए जाइत अछि। कहलो तँ गेल अछि जे साधनाक चरमदशामे चित्ते चिति (चित्-शक्ति)मे परिणत भए जाइत अछि।

१। चगीको। शास्त्री— वा ण मुका कोए। सेन— वाणतका[कोए।

एहि अवस्थाकेँ प्राप्त करबाक हेतु आत्मविकास आवश्यक, जकरा आत्मबोध नहि, तकरा परतत्त्वबोधे कोना हो ? भुसुकु कहैत छथि जे एहि त्रैलोक्यक यथार्थ स्वभाव बुझह आदिमे अनुत्पन्नता, तखन जन्म मरणहिक सद्भाव कोना ? एहन भासित होएब भ्रान्ति मात्र थिक। तेँ ई निश्चित रूपेँ बुझह जे जगतक इएह उक्त स्वभाव थिक, एहि अनुत्पन्नतामे भावाभावक, आवागमनक, प्रश्ने नहि उठैत अछि, राउत भुसुकुक इएह धारणा छन्हि।

८ (४९)

वाजणाव पाड़ी पँउआ खालेँ वाहिउ।
अदअ बङ्गाले क्लेश लुड़िउ॥
आजि भुसु[कु][1] बङ्गाली भइली।
णिअ घरिणी चण्डाली लेली॥
डहिअ[2] पञ्चपाटण[3] इंदिविसआ णठा।
ण जानमि चिअ मोर कहिँ गइ पइठा॥
सोण रुअ मोर किम्पि ण थाकिउ।
निअपरिवारे महासुहे थाकिउ॥
चउकोड़ि भण्डार मोर लइया सेस।
जीवन्ते मइलेँ नाहि विशेष॥

× × ×

वज्रनाव पाड़ि पदुमा–ह्रदमे खेबल।
अद्वय-बङ्गालेँ कलेश लूटल॥
आजु भुसुकु बङ्गाली भेल।
निज घरनी चण्डाली लेल॥
दग्ध पञ्चपत्तन, इन्द्रिय-विषया नष्टा।
न जानी चित्त मोर कत गइ (जा) पइसो॥
सोन-रूप मोर किछु न रहल।
निज परिवारे महासुखे रहल॥
चउकोटि भण्डार मोर लए शेष।
जीबत मुइने नाहि विशेष॥

१। चगीको। शास्त्री—भुसु। सेन—भुसुकु २। चगीको। शास्त्री—दहिअ। सेन—डहि जो ३। चगीको। शास्त्री—पञ्चधाटण। सेन—पञ्च धाटण

वज्र लिङ्गक प्रतीक थिक आ' पद्म योनिक। तेँ, प्रथम पंक्तिक आशय अछि— लिङ्गरूप नौका योनिरूप धारमे खसाए खेबए लगलहुँ, अथवा महाशक्तिकेँ, कुण्डलिनीशक्तिकेँ, सहस्रारस्थ शिवक सङ्ग मिलाए, शिवरूप भए, आत्मा हमर तत्समाने, मैथुनसदृशे, आनन्दातिरेकक, निर्विकल्पक आनन्दक, अनुभव कएलक। शिवशक्ति-अद्वयक उपयुक्त बङ्गालक कारणेँ अनेक दुःख लूटल, विषयभोगक क्रमेँ बड़ बड़ कष्ट सहल। आब कोनो कष्ट नहि। आइ हम शुद्ध बङ्गाली (ब्—शिव, अङ्गाली—अभिन्न, तेँ शिवक अभिन्न) भए गेल छी। आइ स्थूल साधकरूपमे हम डोमिनिकेँ अपन घरनी बनाए नेने छी आ' शिवात्मरूपमे परमाशक्तिकेँ कुण्डलिनीक स्वरूपमे अपन अन्तरङ्ग बनाए नेने छी। आइ पञ्चपत्तन [पञ्चस्कन्धाश्रित[४] अहङ्कार-ममकारादिक संवेदना] दग्ध भए गेल, इन्द्रियविषय शब्दस्पर्शादि नष्ट भए गेल। हमर चित्तपर आब ओहिसभक कोनो प्रभाव नहि, न जाने ओ आइ कतए जाए पैसल अछि (वस्तुतः शून्यस्वरूप शक्तिमे अन्तर्लीन अछि किन्तु हुनक आकार कोनो सीमित नहि, जे स्थूल रूपमे ज्ञातव्य भए सकए, तेँ नहि जानी)। आब हमरा हेतु सोन-रूप किछु मूल्यवान् नहि, दूनूसँ एके रङ्ग तटस्थ छी अर्थात् शून्य (सोन) आ' आकार (रूप) दूनूमे कोनहु एकमे अधिक आसक्त छी, एहन प्रश्न नहि अछि; शून्य-आकार दूनूक संकल्प-विकल्पक क्षय भए गेल अछि, केवल प्रकाशानन्दचिन्मयक, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञानक एकतानताक, बोध भए रहल अछि। एहि असीम सामरस्यक आनन्दक अनुभूति लए अनतह नहि जाए पड़ल, अपन परिवारहिमे भेटि गेल, अपन शक्ति डोमिनिक अनुग्रहसँ। आब हमर विषयवासनाक चतुष्कल भण्डारे समाप्त अछि, आब हमरा की सताओत? आब जेहने जीवन तेहने मरण (जीवन्मुक्तक अवस्थामे स्वतः आनन्दे आनन्द)।

काह्नु पाद (कृष्णाचार्य)

१ (७)

आलिएँ कालिएँ बाट रुन्धेला।
ता देखि काह्नु विमन भइला॥

४। पञ्चस्कन्ध = रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार आ' विज्ञान—ता० बौ० सा० सा० पृ० ५८

काह्नु कहिँ गइ करिब निवास।
जे मनगोअर सो उआस॥
ते तिनि ते तिनि तिनि हो भिन्ना।
भणइ काह्नु भव परिच्छिन्ना॥
जे जे आइला ते ते गेला।
अवणागवणे काह्नु विमन भइला॥
हेरि से काह्नि निअड़ि जिनउर बसइ[1]।
भणइ काह्न मो हिअहि न पइसइ॥

× × ×

आलिएँ कालिएँ बाट रोघल।
से देखि काह्नु विमन भेल॥
काह्नु कत गइ (जा) करब निवास।
जे मनगोचर से उदास॥
से तीनि से तीनि तीनि हो भिन्ना।
भनइ काह्नु भव परिच्छिन्ना॥
जे जे अएला से से गेला।
आवागमनेँ काह्नु विमन भेला॥
हेरि से काह्नु निअर जिनपुर बसइ।
भनइ काह्नु मोहि हिअहि न पइसइ॥

इड़ा-पिङ्गला तँ सुषुम्नास्थ ब्रह्मनाड़ीगत कुण्डलिनीशक्तिक उद्ध्‌र्वगमनमे रोधके, बाधके, भए गेल अछि, से देखि हम, काह्नुपाद, विमन भए गेल छी अथवा (जेना टीकामे, ठीक विपरीत अछि) कुण्डलिनी-शक्तिक विकेन्द्रित होएबाक बाट रुद्ध अछि, कारण हुनक सन्मार्ग ब्रह्मनाड़ीकेँ दूनू दिशिसँ इड़ा-पिङ्गला दबने अछि, तेँ काह्न विमन, विशिष्टमन। आब काह्नु कतए जाए बसताह? जतए बसताह से अलक्ष्य, अवाङ्‌मनोगोचर। जे मनोगोचर जागतिक तत्त्व सेसभ उदास जकाँ लगैत अछि, ओहिमे कोना ढुकू? ओ तीनि, काय-वाक्-चित्त, आ' ई तीनि, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल, भिन्नताक

[1] सेन। शास्त्रा—बहइ

सूचक थिक, एहन गप्प विश्वक परिच्छिन्न स्वभावक दृष्टिएँ अछि। विश्वक मायाजाल अनित्य वस्तु, जे जनमल सभ चल गेल। काह्न एहि आवागमनसँ विक्षुब्ध छथि। ई आवागमन कोना टुटए? मुक्तिसँ। से मुक्ति-प्रतीक जिनपुर तँ लगहिमे अछि; केवल हृदयमे पैसए, चित्त-विकास हो, ततबे आवश्यक।

२ (९)

एवंकार दढ़[1] बाखोड़ मोड्डिउ।
विविह विआपक बान्धण तोड़िउ॥
काह्नु[2] विलसअ आसवमाता।
सहजनलिनीवन पइसि निविता॥
जिम जिम करिणा करिणिरेँ रिसअ।
तिम तिम तथतामअगल वरिसअ॥
छड़गइ सअल सहावे सूध।
भावाभाव वलाग न[3] छुध॥
दशबलरअण हरिअ दशदिसेँ।
[अ]विद्याकरिकुँ दम अकिलेसेँ॥

× × ×

एवंकार दढ़ खम्हा मोड़ल।
विविध विआपक बन्धन तोड़ल॥
काह्नु विलसए आसवमत्त (।)।
सहजनलिनीवन पैसि निवृत्त (।)॥
जिमि जिमि करिणा करिणीए रिसए।
तिमि तिमि तथता मदकल बरिसए॥
षड्गति सकल स्वभावेँ शुद्ध।
भावाभाव बालाग्रॅं[4]न छूत (क्षुब्ध)॥
दशबलरतन हरल दशदिसे (शे)।
अविद्याकरिकेँ दम (ह) अकलेसेँ (शेँ)॥

१। सेन—दृढ २। सेन—काह्न
३। चगीको, सेन। शास्त्री—वलाग न [।]
४। बाल=केश (आप्ते सं० श० को० P. 390 द्रष्टव्य)

'एवं' मन्त्ररूपी वा शक्ति-शिवरूपी चन्द्रसूर्यनाडीक दृढ़ स्तम्भकेँ कोणित कए (मर्दित कए) हृदयस्थ कएल। बाह्य विविध व्यापक बन्धनसभकेँ तोड़ल। आब काह्न मद्य पीबि उन्मत्त वा सामरस्य-सुखानुभवमे विभोर छथि, ओहि सहजानन्द-सामरस्यरूप, शक्तिसङ्गमरूप,कमलिनी-वनमे विलास कए रहल छथि। संसारसँ आइ निवृत्त छथि। जेना जेना चित्तगजेन्द्र शून्यस्वरूपिणी महा-शक्तिकरिणीमे रिसिआ रिसिआ सटैत अछि, तेना तेना शिवत्वक आनन्द-मदधारा बरिसैत अछि। देवासुरप्रभृति षड्गतिशील जीवसभ स्वभावतः शुद्ध अछि, केवल मायाक कारणेँ अशुद्ध। आब हमरा मायाक स्वरूप स्पष्ट भए गेल अछि आ' तेँ भाव-अभावक समस्यासँ केशाग्रो भरि स्पृष्ट वा क्षुब्ध नहि छी। अविद्या तँ हमर दशबल[५]-रत्न (शिवत्वबल)केँ हरण कए लेने छल। अविद्याहिक कारणेँ ओ दशहु दिशामे छिड़िआ गेल छल। किन्तु आब हम ओहिपर विजय प्राप्त कएने छी। तोहरहुसँ इएह अनुरोध अछि जे अविद्या-हथिनीकेँ सुलभ रीतिएँ, तान्त्रिक भोगमय साधनसँ दमन करह। अविद्या-हथिनीसँ काज नहि चलतह, चित्त-गजकेँ विद्याकरिणीक अन्तरङ्ग बनबह, सएह आशय।

३ (१०)

नगरबाहिरि रे डोम्बि तोहोरि कुड़िआ।
छोइ छोइ जाह सो बाह्मनाड़िआ॥
आलो डोम्बि तोए सम करिब मो[१] साङ्ग।
निघिन काह्न कापालि जोइ लांग॥
एक सो पदुमा चौषठ्ठी पाखुड़ी।
तहिँ चड़ि नाचअ डोम्बी बापुड़ी॥
हा लो डोम्बि तो पुछमि सदभावेँ।
आइससि जासि डोम्बि काहरि नावेँ॥
तान्ति विकणअ डोम्बि अवरना[२] चांगेड़ा[३]।
तोहोर अन्तरे छाड़ि नड़पेड़ा[४]॥

५। दश पारिभाषिक बल—श० क०—पृ० ८११ ('बल' शब्द)
१। चगीको। शास्त्री, सेन—म २। चगीको, सेन—अवर ना
३। सेन—चङ्गता ४। सेन—नड़एता

तु लो डोम्बी हाँउ कपाली।
तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि[५] हाड़ेर माली॥
सरवर भाञ्जिअ डोम्बी खाअ मोलाण।
मारमि डोम्बि लेमि पराण॥

× × ×

नगर बाहर हे! डोमिनि! तोहर कुटिआ।
छूबि छूबि जाह से ब्रह्मनाड़िआ॥
हे गे डोमिनि! तोहि सम करब हम सङ्ग।
निर्घृण काह्न कपाली योगी नङ्ग॥
एक से पदुमा चौँसठि पंखुड़ी।
ताहि चढ़ि नाचए डोमिनि बापुड़ी॥
हे हे डोमिनि! तोहि पुछी सद्भावेँ।
आबह जाह डोमिनि! ककर नावेँ॥
ताँति बेचह डोमिनि! आवरण (ा) चङेरा।
तोहर अन्तरे छाड़ी नटपेटा॥
तोँ हे डोमिनि! हम कपाली।
तोहर अन्तरे हम गहल हाड़क माली॥
सरवर भाङि डोमिनि खाए मृणाल।
मारी डोमिनि ली परान॥

हे डोमिनि! नगरसँ बाहर तोहर खोपड़ी छह, अथवा हे महाशक्ते! शरीरक स्थूल परिधिसँ बाहर, सूक्ष्म रूपमे अहाँक वास्तविक सत्ता अछि; कुण्डलिनीरूपमे अहाँकाँ ब्रह्मनाड़ी छूबि छूबि जाइत अछि। हे महामुद्रे! हम अहाँक सङ्ग रतिलीन होएब शिवरूपमे, आइ काह्न अष्टपाश-विमुक्त छथि, स्वतः घृणा नहि, कापालिकक रूपमे अघोर छथि, नग्न छथि, विषयवासनासँ अनावृत छथि। एक ओ मूलाधारचक्रक पद्म, तकर चौँसठि दल, ताहिपर मानू कुण्डलिनीरूपमे महामुद्रा डोमिनी माता नाच करैत छथि। हे महामुद्रे! अहाँकेँ हम सद्भावेँ पुछैत छी—'अहाँ कोन नावसँ सहस्रारपर बहैत जाइत

५। सेन—घलिलि

छी आ' ओतएसँ बहैत उतरैत छी ?' कोनो स्थूल संवाहक तत्त्व नहि अछि, चित्त मात्र माध्यम अछि, सएह आशय। हे डोमिनि ! हे महामुद्रे ! अहाँक काज अछि ओझराहटि-पतनक रूपमे मूल्य लए मायाक ताँति बेचब आ आवरणरूप चङेरा बेचब। अहाँक निकट भेलासँ हम नटपेटा छोड़ि दी, जाहिसँ उपकरण लए मायामय विश्वमे नट-लीला करैत छलहुँ। अहाँ डोमिनि [अस्पृश्या, अत्वक्गोचरा] छी। हम कापालिक छी, अहाँक समीप भए हम अस्थिमाला धारण कए नेने छी। प्राणशक्ति पशुक शरीरक अन्तश्चक्ररूप सरोवरकेँ तोड़ि, ओहिमे पैसि मृणालसदृश ब्रह्मनाड़ीक भोग करैत छथि। आब हम कुण्डलिनीक (नाड़ीक मूलभूत व्यापक) सत्त्वकेँ अपनामे ग्रहण कए आत्मामे मिलाए लेब, सभक मूलाशक्तिकेँ आत्मकेन्द्रित कए शिवत्वलाभ करब।

४ (११)

नाड़िशक्ति दिढ़ धरिअ खाटे[1]।
अनहा डमरु बाजइ वीरनादे॥
काह्न कपाली योगी पइठ अचारे।
देहनअरी विहरइ एकाकारे॥
आलि कालि घण्टा नेउर चरणे।
रवि शशी कुण्डल किउ आभरणे॥
राग द्वेष[2] मोह लाइअ छार।
परम मोख लबए मुत्तिहार[3]॥
मारिअ शासु नणन्द घरे शाली।
माअ मारिआ काह्न भइल कबाली॥

× × ×

नाड़िशक्ति दृढ़ धरी खाटे।
अनहद डमरू बाजइ बीरनादे॥
काह्न कपाली योगी पइस आचरे।
देहनगरी विहरइ एकाकारे॥

१। चगीको। शास्त्री—खट्टे। सेन—खदे २। चगीको। शास्त्री—देष। सेन—देश
३। चगीको, सेन। शास्त्री—मुत्ताहार

आलि कालि घण्टा नेउर चरणे ।
रवि-शशि-कुण्डल कएल आभरणे ॥
रागद्वेषमोह लेपिकें छार ।
परम मोक्ष ल [भ]ए मुक्तिहार [मुक्ताहार] ॥
मारि सासु ननंद [ननदि] घरे श्याली ।
माए मारि कान्ह भेल कपाली ॥

ब्रह्मनाड़ी आदि [षट्चक्रनिरूपणक प्रसङ्गमे कहल] नाड़ीसभक अन्तः-स्थित समस्त शक्तिकेँ, कुण्डलिनी वा प्राणशक्तिकेँ, चित्तक आधार बनाए, ओहि-पर ओङठि मनसा पड़ि रहल छी। एहि मननक क्रममे अनाहत-ध्वनिरूप डमरूक निनाद 'सोहं' जोरसँ सूनि रहल छी। कापालिक काह्न योगी आब तेहन आचारक अनुसरण करैत छथि जाहिमे देहे देवालय थिक। एहि आलयमे, देवनगरीमे, मानू ओ एकरूपमे, एक तानमे, समाधिस्थ भए सामरस्यसुखोपभोग करैत विहार कए रहल छथि। ओहि साधनाक क्रममे इड़ा-पिङ्गलागत पवनक सन-सन शब्द, ओहि नाड़ीयुगलमध्य ऊर्ध्वसंचारिणी कुण्डलिनीशक्तिक नूपुर-ध्वनि अछि, शरीरस्थ सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल ओहि महतीशक्तिक ताटङ्कद्वय थिक। एहि प्रकारक अनुभूतिक प्रसादात् काह्न सांसारिक विषयवासनासभकेँ दग्ध कए राख बनाए देल। आब जँ ओहिसभक अनुभवो होइत छन्हि तँ दमित, प्रशान्त, शीतल संवेदना मात्रक रूपमे, एहन सन जेना अपन समस्त ज्वालाकेँ छाड़ि निःशक्ति भए ओ केवल शरीरमे (भस्म जकाँ) लागल अछि। आब कान्ह बड़ बहुमूल्य हार, मुक्ताहार, लाभ कएने छथि, ओ थिक परममोक्षहार, मुक्तिहार। जीवात्मा (स्त्री)क सासु-ननदि जकाँ श्वास आ' ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-सुखसाधनसभकेँ तँ काह्न दमित कए समाप्त कए देल जे सभक मूलभूता मलिन-सत्त्वप्रधाना मायहुकेँ, समस्त विषयवासनाक जननी मायहुकेँ आइ समाप्त कए देल, हुनक प्रपञ्चजालसँ अवगत भए ओहिसँ अप्रभावित छथि (शुद्ध सत्त्वप्रधाना महामायामे लीन भए गेल छथि, स्वतः परम शिवरूप, सच्चिदानन्दरूप बनि गेल छथि)।

५ (१२)

करुणा पिहाड़ि खेलहुँ नअबल।
सद्गुरुबोहेँ जितेल भवबल॥

फीटउ दुआ मादेसि रे ठाकुर।
उआरिउएसेँ काह्न णिअड़[1] जिनउर॥
पहिलेँ तोड़िआ बड़िआ मारिउ[2]।
गअवरेँ तोड़िआ पाञ्चजना घालिउ॥
मतिएँ ठाकुरक परिनिविता।
अवश करिआ भवबल जिता॥
भणइ काह्नु अम्हे[3] भाल दान देहुँ।
चउषठ्ठि कोठा गुणिया लेहुँ॥

× × ×

करुणा पीढ़ी खेलाइ नयबल।
सद्गुरुबोधेँ जीतल भवबल॥
काटल द्वैत, मातु रे! ठाकुर।
उपकारि-उदेशेँ काह्न निअर जिनपुर॥
पहिने तोड़ि पत्तिका मारल।
गजवरे तोड़ि पाञ्चजन घालल॥
मतिएँ (मन्त्रिएँ) ठाकुरक परिनिवृत्त।
अवश कए भवबल जित (ल)॥
भनइ काह्न, हम भल दान दी।
चौँसठि कोठा गुनि लए ली॥

आइ काह्न करुणामय स्वाधिष्ठानचित्तकेँ समस्त जागतिक प्रपञ्चक सतरञ्जक घर जकाँ मानि, ओहि घरसभमे जागतिक अनुभवकेँ नहि राखि, आध्यात्मिक तत्त्वसभकेँ उपविष्ट कए अपूर्व लोकोत्तर विलास कए रहल छथि, खेड़िए जकाँ सद्गुरुदत्त ज्ञानसँ अपन आध्यात्मिक शक्ति शरीरस्थ तत्त्वसभक द्वारा सांसारिक वासनासभकेँ जीति जगद्वल प्राप्त कए नेने छथि। आइ द्वैततरु छिन्न भए गेल, अद्वैत-भावना अङ्कुरित पुष्पित भेल। रे अविद्याग्रस्त चित्त! तोँ आइ मातु भए गेलह, तोहर प्रशक्ति समाप्त। उपकारीक उद्देश्येँ तकैत तकैत

१। चगीको—निअर २। चगीको—माराडिउ। सेन—मराड़िउ
३। चगीको। शास्त्री, सेन—आम्हे

कहिक ध्यान अकस्मात् एहिपर जाइत छन्हि जे महान् स्वर्ग (आनन्दमय लोकोत्तर जगत्) निकटहिमे अछि। जगत्प्रपञ्च-सतरञ्जक जालपर कोना विजय प्राप्त कएल, तकरा सूचित करबाक हेतु काह्न ओकर प्रक्रिया देखबैत छथि। पहिने (आठो) प्यादा कटल अर्थात् घृणाशङ्कादि अष्टपाश कें काटल। समाधिस्थ चित्तगज फील गोटीकें ढुकाए अन्य पात्र (घोड़ा आदि) वा ज्ञानेन्द्रिय विषय-सभकें काटल। मन्त्री वा मन्त्रशास्त्रीय बुद्धि द्वारा तँ अविद्याग्रस्तचित्तराज स्वयं मातु भए गेलाह, अचल भए गेलाह। आब ओहि कलुषमय चित्तहिकें जखन मातु कए लेल तखन जगद्वललाभक गप्पे कोन ? ओ तँ अनायास सिद्ध भए गेल। काह्न कहैत छथि—हे महामुद्रे ! चौँसठि दलक पद्म(चक्र) हम अहीँक सेवामे प्रस्तुत कएने छी, ओ अहीँक निवास-मन्दिर अछि, सएह हमर अनुदान बुझू।

६(१३)

तिशरण णावी किअ अठकुमारी।
निअ देह करुण शून मेहेरी[१]॥
तरित्ता भवजलधि जिम करि माअ सुइना।
मझ वेणी तरङ्ग म[२] मुनिआ॥
पञ्च तथागत किअ केडुआल।
बाहअ काअ काह्निल[३] माआजाल॥
गन्ध परस रस जइसोँ तइसोँ।
निंद विहुने सुइना जइसो॥
चिअकएणहार सुणत माङ्गे[४]।
चलिल काह्न महासुहसाङ्गे॥

× × ×

त्रिशरण नावी कृत अठकुमारी।
निज देह करुणासूनमेहेली (महिला)॥

१। चगीको। शास्त्री—करुणाशूणमे हेरी। सेन—करुणाशून मेहेली।
२। चगीको। शास्त्री—तरङ्गम ३। चगीको। शास्त्री—काह्नि ल
४। चगीको। शास्त्री—सुणतमाङ्गे

तीर्ण भवजलधि जिमि करि माया सपना।
माझ वेणी तरङ्ग हम मूनि॥
पञ्चतथागतकृत करुआरि।
बाहए काय काह्निल मायाजाल॥
गन्ध-परस-रस जइसन तइसन।
निंद-विहीने सपना जइसन॥
चित्ताकर्णधार शून्यता-मागें (माङि पर)।
चलल काह्न महासुख सङ्गे॥

काय, वाक्, चित्त इएह तीनू तँ साधनाक साधन अछि, एहि तीनू शरणकेँ नौका मानि प्राणशक्तिकेँ ऊपर खेबए लगलहुँ, एहि नौकहिक प्रसादात् समस्त अष्ट-कुमारी (ब्राह्मी आदि वा शिवक अष्टमूर्त्तिक सहचरी अष्टप्रकृति पञ्चमहाभूतार्कचन्द्र-यज्वान) केँ, अपन देहहिमे, करुणा-शून्यमे वा शिव-शक्तिमे (अन्तरङ्ग परम-सत्तामे) देखल, अथवा एहि तीनू शरणकेँ अष्टशक्तिमे परिणत कए (साधनाक बलेँ अष्टशक्तिक अभिन्न काय, वाक्, चित्तकेँ बनाए), अपन देहकेँ शिवशक्तिमे लीन कए देल, एहन अनुभव होअए लागल। तखन मायाकेँ सपना मानि संसार-सागरकेँ पार कएल। इड़ा-पिङ्गला दूनूक तरङ्गकेँ रोकि (मध्यस्थ सङ्गम ब्रह्म-नाड़ीकेँ अपन प्राण-कुण्डलिनीशक्तिसँ पूर्ण कए) वैरोचन, अक्षोभ्यादि देवसमूहकेँ करुआरि मानि हुनकहि लोकनिक आश्रय धएने काय-नौकाकेँ खेबैत, योगसाधनामे लागल लागल काह्न मायाजालसँ उत्तीर्ण भेलाह। गन्ध-स्पर्शरसादि जे सुख-दुःख दिअए, हम इएह मानैत छी जे ओकर सत्ता निद्रा-विहीन, जाग्रत-सुषुप्तक मध्यवर्त्ती दशा स्वप्नदशासँ अधिक नहि, अर्थात् अवास्तविक थिक, भ्रममात्र होइत अछि जे यथार्थ थिक। चित्तकेँ कर्णधार मानि (चित्तहिक बलेँ) काह्नपाद सामरस्य-सुख-द्वीप दिशि चललाह।

७ (१८)

तिणि भुअण मइ वाहिअ हेलेँ।
हाँउ सुतेलि महासुहलीलेँ॥
कइसणि हालो डोम्बी तोहोरि भामरिआली।
अन्ते कुलिणजण माझेँ कावाली॥

तँइ लो डोम्बी सअल विटालिउ।
काज ण[1] कारण ससहर टालिउ॥
केहो केहो तोहोरे विरुआ बोलइ।
विदुजन[2] लोअ तोरँ कण्ठ न मेलइ॥
काह्ने गाइ तु कामचण्डाली।
डोम्बीत[3] आगलि नाहि च्छिणाली॥

× × ×

तीनू भुवन मोहि वाधित हेलें।
हम सुतल महासुखलीलें॥
कइसनि हे गे डोमिनि! तोहर भभटपन।
अन्ते कुलीन जन माझे कपाली॥
तोहें हे डोमिनि! सकल विटारल।
कार्य्य न कारण शशधर टारल॥
केओ केओ तोहरा विरूपा बोलइ।
विद्वज्जन लोक तोर कण्ठ न मेलइ॥
काह्न गावइ, तों कामचण्डाली।
डोम्बोसँ (तः) अगिली नाहि छिनारी॥

तीनू लोककेँ हम तुच्छ बुझल, अवहेलना कएल, आब ओकर कोनो प्रशक्ति नहि हमरापर, ओकर विडम्बना रुकि गेल। आइ हम सामरस्यसुख-विलासक सङ्ग तुरीयावस्थाक अनुभव करैत समाधिस्थ छी। हे महामुद्रे वा शरीरधारिणी डोमिनि! ई तोहर की भभटपन जे हमरा, कापालिककेँ, मध्य-स्थान दैत कुलीन (शरीरलीन) जनकेँ अन्तमे मोजर दैत छहुन्ह (कापालिक महाशक्तिक मध्यस्थ विन्दुमे आत्माकेँ लीन कए दैत छथि, सएह आशय)। तँ ने कहल जाइत अछि जे तों प्रपञ्चिनी छह, तँ तों सभकेँ बिलटा दैत छह, कार्य्य-कारण-सम्बन्धक अभावहुमे सहजेँ प्रबुद्धचित्तचन्द्रकेँ मुक्त करैत छह। केओ केओ तोरा विरूपा (विकृत रूपा, विना रूपक) कहैत छथून्ह, विद्वज्जन

१। चगीको। शास्त्री—काजण २। चगीको। शास्त्री—विदुजण
३। चगीको। शास्त्री—डोम्बी त

तोरा कण्ठसँ नहि छोड़ैत छथून्ह (अथवा कण्ठ नहि मैलैत छथून्ह)। काह्न गबैत छथि—हे महामुद्रे ! तोँ कामचण्डाली, कुण्डलिनी (शक्ति) वा कामेश्वरी महाशक्ति छह। काह्नक धारणा तँ इएह छन्हि जे एहि डोमिनिसँ, महामुद्रासँ, आगाँ कोनो छिनारि नहि (बड़ पैघ छिनारि छथि ओ, एहि अर्थमे जे सकल प्राणीक आत्मभूत शिवक सङ्ग रतिलीलाक हेतु आकुलि रहैत छथि)।

८ (१९)

भवनिव्वाणे पड़ह मादला।
मणपवणवेणि करण्डकशाला[1]॥
जअ जअ दुन्दुहिसाद उछलिआँ।
काह्न डोम्बीविवाहे चलिआ॥
डोम्बी विवाहिआ अहारिउ जाम।
जउतुके किअ आणुतु[2] धाम॥
अहणिसि सुरअपसङ्गे जाअ।
जोइणिजाले रअणि पोहाअ॥
डोम्बीएर सङ्गे जो जोइ रत्तो।
खणह न छाड़अ सहज उन्मत्तो॥

× × ×

भवनिर्वाणे पटह मर्दला।
मन-पवन दुइ करण्ड-कसाला॥
जय जय दुन्दुभि शब्द उछलला।
काह्न डोम्बी विवाहए चलला॥
डोम्बी विवाहि आहारल जन्म।
जउतुके कृत अनुत्तर धर्म॥
अहर्निशि सुरत-प्रसङ्ग जाए।
योगिनि-जाले रजनी पोहाए॥
डोम्बीकेर सङ्ग जे योगी रक्त।
खनहु न छाड़ए सहज उन्मत्त॥

१। सेन—करण्ड-कसाला २। सेन—आनुगुत

भव-बन्धन आ' मोक्ष ई दूनू पटहमर्दल वाद्ययन्त्रक काज कएलक आ' मनप्राणपवन करण्ड आ' कसाला वाद्ययन्त्रक। भव-बन्धनक ढोल-मृदङ्ग पिटैत आ' मन-प्राणक अनाहत-शब्द-ध्वनि प्रसरित करैत काह्न डोमिनि महा-मुद्राक सङ्ग सामरस्यक हेतु चललाह, बूझि पड़न्हि जे शून्यगगन दहराकाशमे जय-जय तुमुलनाद भए रहल अछि। काह्न साधना-मार्गपर बढ़ैत बढ़ैत शिवत्व-लाभ कए महाशक्तिमे सदाक हेतु संलीन भए गेलाह, आब जन्मक बन्धन हटि गेल, जउतुकमे अनुत्तरत्व (परमपद) लाभ भेलन्हि, आइ ओ मुक्त छथि, अहर्निशि सामरस्यसुखोपभोगमे डुबल छथि; शास्त्रकथित शून्यहृदया योगिनीक विलास-विच्छित्तिक साक्षात्कार करैत राति बितबैत छथि। एहि डोमिनि- महामुद्रामे, चितिअपरिणामिनिशक्तिमे जे योगी सटि जाइत छथि (एक बेरि), तनिका पुनः ओहि विमर्शक आनन्दकेँ छोड़ल नहि जाइत छन्हि, ओ सहज-सामरस्यानन्दमे विभोर रहैत छथि।

६ (२४)[१]

पूर्णचन्द्र उदयति यदा।
चित्तराजो विमलो भवति तदा॥ १॥
मोहमलं छिन्नं गुरूपदेशेन।
विषयेन्द्रियं गगनमुपेतं ॥ धृ० ॥
खसमबीजं यत् खसमं याति।
आत्मवृक्षस् त्रिधातुषु वितनोतिच्छायां॥ २॥
यथा उदिते सूर्ये रात्रिर्व्यपयाति।
(तथा) भवसमुद्रमोहरजो दूरीभवति ॥ ३॥
राजहंसो यथा जलं विविनक्ति।
भवं भुंक्ष्व [तथा] इति कथयति कृष्णपादः॥ ४॥

× × ×

पूर्णचन्द्र उगए जब।
चित्तराज विमल होए तबे॥

१। "This gïti with its Sanskrit Commentary lost due to a lacuna in the Ms. is given below in Sanskrit retranslation from Tib. version appended in Roman Transliteration at the end of the work...... ,"

मोहमल छिन्न गुरूपदेशें ।
विषयेन्द्रिय गगनयुक्त ॥ ध्रु० ॥
खसमबीज जे (से) खसम जाए ।
आत्मवृक्ष त्रिधातु (मे) पसारए छाया ॥
जेना उगने सूर्यक राति पड़ाए ।
(तेना) भवसमुद्र मोहधूलि दूर होए ॥
राजहंस जेना जल बिभिनाबए ।
भव भोगह (तेना) ई भनथि किसुन (काह्न) पाद ॥

षोड़शकलायुक्त प्रबुद्ध चित्तचन्द्र वा प्राणचन्द्र जखन उदित होइत अछि, उठैत अछि, वा जखन विकसित भए षोड़शीक अन्तरङ्ग भए जाइत अछि सहस्रारस्थ शिवरूपमे, स्वतः तखन चित्तराज शुद्ध सत्, चित्, आनन्दमे परिणत भए जाइत अछि। गुरूपदेशसँ मोहमल नष्ट भए जाए आ' इन्द्रियसभक प्रेरणा आब शून्यमे अन्तर्लीन भए जाए, सभ ओहीमे लागल रहए। पिण्डक शून्यस्थ बीज सेहो व्यापक अण्डक शून्यमे मीलि जाए। आत्मारूप वृक्षक छाया काय, वाक्, चित्तकेँ व्याप्त कएने अछि। जेना सूर्योदय भेलासँ राति [अन्धकारयुक्त] पड़ाए तहिना संसारक अगम्य सागरक मोहान्धकारमय निशा, चिद्घनप्रकाशसँ दूर पड़ा जाए। राजहंस जेना नीरकेँ क्षीरसँ फराक करैत अछि तहिना अचित्केँ चित्सँ फराक रूपमे देखैत संसारक [आ पुनः सामरस्यक] भोग करह, कृष्णपादक ई कहब।

१० (३६)

सुण वाह तथता पहारी ।
मोहभण्डार लइ सअला अहारी ॥
घुमइ ण चेवइ सपरविभागा ।
सहजनिदालु काह्निला लाङ्गा ॥
चेअण न वेअन भर निद गेला ।
सअल सुफल करि सुहे सुतेला ॥
स्वपणे मइ देखिल तिहुवण सुण ।
घोरिअ अवणागमण विहुन ॥

शाखि करिब जालन्धरिपाए ।
पाखि ण चाहइ[1] मोरि पाण्डिआचाए ॥

× × ×

सून-बाह तथता प्रहारि ।
मोहभण्डार लए सकल (!) आहारि ॥
सुतइ न देखइ स्वपरविभागा ।
सहज-निद्रालु काह्न नङ्गा ॥
चेतन न वेदन भरि निन्द गेला ।
सकल सुफल करि सुखे सुतला ॥
स्वपने मोहि देखल त्रिभुवन सून ।
घोरि आवागमन विहीन ॥
शाक्षि करब जालन्धरपादे ।
पक्षी न देखइ मोर पण्डिताचार्ये ॥

शून्यमायाक प्रवाहकेँ शिवता–धर्मसँ, विमर्शसँ, प्रहार कए काह्न समग्र मोहभण्डारकेँ लए कए खा' गेलाह । आइ कान्ह तुरीयानन्दमे विश्रान्त छथि, स्व–परक भेद देखितहिँ नहि छथि । सामरस्यमे डुबल समाधिस्थ रहैत छथि, मायाक आवरणसँ मुक्त [नग्न] रहैत छथि, आब चैतन्यक अवस्थामे छथि, कोनो वेदना नहि, गाढ़ तुरीयमे ध्यानमग्न छथि । प्रतीत होइत छन्हि जे आइ सभ साधना सुफल भेल आ सुखसँ महाशक्तिमे डुबल सुतल छथि, स्वप्नहुमे जँ देखैत छथि तँ शून्यमये शून्यस्वरूपे विश्व, विषयवासना स्वप्नहुमे नहि सतबैत छन्हि । आब आवागमन–प्रक्रिया वस्तुकेँ छोड़ि देल, ओ निस्सन नहि रहल, घमि गेल, ओहि बन्धनसँ विहीन भए गेल छथि । एहि अवस्थाकेँ ककरा बुझाओल जाए ? केवल जालन्धरपादकेँ साक्षी मानल जाए, जे बुझैत छथि, अन्य पण्डिताचार्य तँ एहि मार्गक पक्षपाती नहिए प्रतीत होइत छथि ।

११ (४०)

जो मणगोअर आलाजाला ।
आगम पोथी इष्टामाला ॥

---

१ । चगोको । शास्त्री, सेन—राहुअ

भण कइसें सहज बोलवा[1] जाग्र ।
काग्र वाक् चिग्र जसु ण समाग्र ॥
आले गुरु उएसइ सीस ।
वाक्पथातीत काहिब कीस ॥
जेत इ[2] बोली तेत वि टाल[3] ।
गुरु बोब से सीसा काल ॥
भणइ काहु जिणरग्रण वि कइसा[4] ।
कालें बोब संबोहिग्र जइसा ॥

× × ×

जे मनगोचर आला-जाला (इन्द्रजाला) ।
आगम-पोथी इष्टामाला ॥
भन कइसे सहज बोलल जाए ।
काय वाक् चित्त जसु न समाए ॥
अलं गुरु उपदेशइ सीस (शिष्य) ।
वाक्पथातीत कहब काहि ॥
जते ई बोली तते टाल-मटोल ।
गुरु बौक से शिष्य बहिर ॥
भनइ कान्हु जिनरतनो कइसन ।
बहिर बौक संबोधित जइसन ॥

जे किछु मनोगोचर तत्वसभ अछि, सभ मायाक इन्द्रजाल मात्र थिक, असत् थिक, तेँ आगमशास्त्रहुक सिद्धान्तसभ, देवी-देवतासभक विग्रहसभ, इष्टदेवीक जपमाला आदि सभ इन्द्रजाले थिक (चित्त-शोधन-विकासक साधन मात्र थिक, अन्तिम सत्य नहि) सहज सामरस्यानन्दकेँ शब्द द्वारा व्यक्त कोना कएल जाए ? कारण, ओहिमे तँ शरीरक, वाक् तत्त्वक वा चित्तक प्रवेशे नहि भए सकैत अछि [अवाङ्मनसगोचर ओ परम तत्त्व शिव-शक्ति तत्त्व थिक]। व्यर्थे

१। चगीको। शास्त्री—बोल वा २। चगीको। शास्त्री, सेन—जे तइ
३। चगीको। शास्त्री—ते त विटाल
४। चगीको। शास्त्री—विकसइ सा

कोनो गुरु शिष्यकेँ उपदेश द्वारा हृदयङ्गम करेबाक प्रयास करैत छथि, थाक् माध्यमसँ उत्तर, अतीत परम तत्त्व ककरा कहल जाए? जे किछु कहल जाइत अछि से सभ प्रश्नसभक समाधानक क्रममे टालमटोल करब मात्र थिक, उपयुक्त उत्तर अनुभवमात्रैकगम्य थिक। गुरु जखन ओहि परम सत्ताक वास्तविक परिचय दैत छथि तखन हुनका मूके बनए पड़ैत छन्हि (उत्तरमे 'नेति नेति' कहए पड़ैत छन्हि, परिणाममे चुप), शिष्य जँ सत् शिष्य रहैत छथि तँ कथित शब्दसभकेँ अनसुनी कए केवल सारक अनुभवमे डूबि जाइत छथि। कान्हक धारणा तँ इएह छैन्हि जे ओ स्वर्गरत्न (परमसुखक अवस्था) केहन थिक से कहब तहिना संभव आ' प्रभावशाली जेना सङ्केतमात्र द्वारा, बौकक द्वारा, बहिर केँ बुझाओल जाएब।

१२ (४२)

चिअ सहजे शूण संपुन्ना।
कान्धवियोएँ मा होहि विसन्ना॥
भण कइसे काह्नु नाहि।
फरइ अनुदिनँ[1] तैलोए पमाइ॥
मूढ़ा दिठ नाठ देखि काअर।
भाग तरङ्ग कि सोषइ साअर॥
मूढ़ा अच्छन्ते लोअ न पेखइ।
दूध माझेँ लड़ अच्छन्ते न देखइ॥
भव जाइ ण आवइ एथू कोइ।
अइस[2] भावे विलसइ काह्निल जोइ॥

× × ×

चित्त सहजे शून सम्पूर्णा।
कान्ह वियोगेँ न हो विषण्णा॥
भन कइसे कान्हु नाहि।
फरइ अनुदिन त्रैलोक्ये प्रमापि॥

१। चगोको। शास्त्री—अनुदिन। २। चगोको। शास्त्री, सेन—आइस।

मूढ़ (ा) दृष्ट नष्ट देखि कातर ।
भग्न तरङ्ग की सोखइ सागर ?
मूढ़ अछैते लोक न पेखइ ।
दूध माझे नेनु अछैते न देखइ ॥
भव जाइ न आवइ (न) एत काइ ।
अइसन भावें विलसइ काह्निल योगि ॥

आब काह्न सहजावस्थामे शून्यस्वरूपिणी महाशक्तिमे डुबल छथि, पूर्ण बनि गेल छथि, मुक्त छथि, चित्तक विषयी व्यापारक दृष्टिएँ मरिए गेल छथि (प्राण रहितहुँ जीवन्मुक्त छथि), आब काह्न व्यक्तिरूपमे (विषयासक्तरूपमे) नहि भेटताह, हुनक वियोग अनुभूत होएत, किन्तु विषाद नहि करू, ई किएक बजैत छी जे काह्न नहि छथि, काह्न छथि (हँ, जीवन्मुक्त छथि) ओ तँ अनुदिन त्रैलोक्यक प्रमाता शिवरूप बनि चिद्रूपमे स्फुरित होइत छथि, सफल होइत छथि, मूढ़ व्यक्ति सकल दृष्ट वस्तुकें नष्ट होइत देखि कातर भए जाइत अछि, ई नहि बुझैत अछि जे एक तरङ्ग भग्न भेलासँ की सागर सुखा जाएत ? मूढ़, अछैते लोक (सूक्ष्म लोक) ओकरा देखैत नहि अछि, दूधमे मक्खन अछैते ओकरा देखैत नहि अछि (अर्थात् समस्त पदार्थक सारभूत शक्तिकें, ओकर निकट रहितहुँ, ओकर अस्तित्व रहितहुँ, चिन्हैत नहि अछि)। भवसँ केओ जाइत नहि अछि आ' ने केओ एतए अबैत अछि (केवल मायाक कारणेँ जन्म-मृत्युक सीमाबोध होइत अछि), एहन भावसँ काह्नयोगी सामरस्य-सुख-विलास करैत छथि (ओ आइ नित्या परमा सत्तासँ परिचित छथि आ' ओहि सत्ताक आभास मायाकें मानैत छथि, तेँ जन्म-मृत्यु वस्तु निरर्थक बूझि पड़ैत छन्हि, आत्माक अविनाशित्व रहबाक कारणेँ ओकर अएबा-जेबाक प्रश्ने उठाएब अनुचित)।

१३ (४५)

मण तरु पाञ्च इन्दि तसु साहा ।
आसा बहल पात फलवाहा ॥
बरगुरुवअणकुठारेँ छिजअ ।
काह्न भणइ तरु पुण न उइजअ ॥

बाढ़इ सो तरु सुभासुभ पाणी।
छेवइ विदुजन गुरु परिमाणी॥
जो तरु छेव भेवउ न जाणइ।
सड़ि पड़िआँ रे मूढ़ ता भव माणइ॥
सुण तरुवर गअण कुठार।
छेवह सो तरु मूल न डार[1]॥

× × ×

मन तरु पाँच इन्द्रिय तसु शाखा।
आशा बहल पात फलवाहा (क)॥
वरगुरुवचनकुठारें छेवह।
कान्ह भनइ तरु पुनि नहि उपजए॥
बाढ़इ से तरु शुभाशुभ पानी।
छेवइ विद्वज्जन गुरु - प्रमाणी॥
जे तरु छेव (ए), भेदो न जानइ।
सड़ि पड़ए रे मूढ़ ता' भव भानइ॥
सून तरुवर गगन कुठार।
छेवह से तरु मूल, न डार (रि)॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मनरूपी वृक्षक पाँच डारि थिक, ओहि शाखासभमे आशाक पातसभ लटकल रहैत अछि जे सभ फलवाहक मानल जाइत अछि। मोहेँ (मोहक कारणेँ) लोक शब्दस्पर्शादिगत सुखानुभवक प्राप्तिमे आशाकेँ लगओने रहैत अछि, सदिखन आशा करैत अछि जे अमुक फल भेटत एवमादि। आशामे घुरिआएल रहि लोक सत्यसँ दूर भए जाइत अछि, तेँ परम-सत्यक अनुसंधानक हेतु ओहि आशाक मूल मनोवृत्तहिकेँ काटह, श्रेष्ठ गुरु-वचन-कुठारसँ से कए सकबह। ओ गाछ शुभाशुभ (-उत्पादक पुण्य-पाप)क जलसिञ्चनसँ बढ़ैत अछि, शुभाशुभकर्मसँ चित्तक विषय-वासना बढ़ैत जाइत अछि, गुरुप्रमाणसँ विद्वज्जन एहि वासनानुरक्त चित्तवृत्तकेँ कटैत छथि।

१। चगीको। शास्त्री, सेन—डाल।

जे व्यक्ति एहि वृत्तक छेद-भेद करए नहि जनैत छथि से ता' धरि जगज्जालमे विश्वास करैत सड़ि जाइत छथि। सुतरां अविद्यारूप, मायारूप ओहि शून्य-तरुकेँ विद्यारूप (विमर्शरूप) गगन-कुठारसँ काटह, शून्य-मायाक आवरण-विक्षेपरूप वृत्तकेँ महामायाक शून्याहन्ताविमर्श-कुठारसँ काटह, जड़िसँ काटह, केवल शाखासभकेँ नहि काटह।

विरुवापाद

१ (३)

एक से शुण्डिनि[1] दुइ घरे सान्धअ।
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ॥
सहजे थिर करि वारुणी सान्ध।
जेँ अजरामर होइ दिढ़ कान्ध॥
दशमि दुआरत चिह्न देखिआ[2]।
आइल गराहक अपणे बहिआ॥
चउशटि घड़िये देल पसारा।
पइठेल गराहक नाहि निसारा॥
एक से घड़ली[3] सरुइ नाल।
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल॥

× × ×

एक से शुण्डनी दुइ घर मिलबए।
चिक्कन बाकलेँ वारुणी बान्हए॥
सहजे थिर करि वारुणी मिलबह।
जेँ अजरामर होइ दीढ़ कान्ह (स्कन्ध)॥
दशमि दुआरिएँ चिह्न देखिकेँ।
आएल ग्राहक अपने बहिकेँ॥

१। सेन—शुण्डिनिणी। २। सेन—देखइआ। ३। चगीको, सेन—घड़ली।

चौंसठि घड़िएँ देल पसार।
पइसल ग्राहक नाहि निःसार॥
एक से घटी, सूक्ष्म नाल।
भनथि विरुवा थिर करि चाल (ह)॥

एक ओ शुण्डिनी, शौण्डीशक्ति वा कुण्डलिनी-शक्ति दुइ घरकेँ वा सूर्य-चन्द्र नाड़ी केँ मिलबैत अछि, विवाह द्वारा वा सुषुम्नामे ऊठि; चिक्कन वस्त्र-ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्नास्था) वा गुरूपदेशसँ वारुणी (सहस्रारस्थ मधु) केँ बन्हैत अछि। सहजभाव वा सामरस्य-भावकेँ स्थिर कए ओहि चित्तकेँ परमशिवलीन करह। किएक? ओहिसँ तोँ अजर-अमर भए जएबह, दृढ़स्कन्ध भए जएबह। हे कांन्हक आत्मन्! दशम दुआरिएँ [वैरोचनद्वारसँ (सं० टी०) वा दशम इन्द्रिय उपस्थचिह्नद्वारेँ][४] महाराग-सुख-चिह्न देखि ओ ग्राहक (कामसत्त्व) बाहर आएल आ' अपनाकेँ दिवारात्र प्रसरित रखलक, ओहि सामरस्य-सुख (वा स्त्री-चिह्न)मे प्रविष्ट भए पुनः निःसृत नहि भेल। ओ जे पूर्वोक्त तत्त्वज्ञानकेँ घटित केनिहारि नाड़ी, तकर नाल सूक्ष्म (ज्ञानमय)। विरुवापाद कहथि—ओहि चित्त वा प्राणकेँ निस्तरङ्ग रूपमे, प्रशान्तरूपमे चलाबह। (एहिठाम मैथुनक प्रतीक अछि)।

महीधरपाद

१ (१६)

तिनिएँ पाटेँ लागेलि रे अणह कसण घण गाजइ।
ता सुनि मार भयङ्कर रे विसअमण्डल सअल भाजइ॥
मातेल चीअगएन्दा धावइ।
निरन्तर गअणन्त तुसेँ घोलइ॥
पाप पुण्ण बेणि तोड़िअ सिकल मोड़िअ खम्भाठाणा।
गअणटाकलि लागि रे चित्त पइठ निवाणा॥

४। 'सिद्धसाहित्य' (पृ० २११)मे मूलाधार तथा शुक्रवैरोचनक उल्लेख; दोसर, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय (५-५) क गणनामे दशम अछि 'उपस्थ'।

महारसपाने मातेल रे तिहुअन सएल उएखी ।
पञ्चविसअनायक[1] रे विपख[2] कोवि न देखी[3] ॥
खररविकिरणसन्तापेँ रे गअणाङ्गण गइ पइठा ।
भणन्ति महित्ता मइ एथु बुड़न्ते किम्पि न दिठा ॥

× × ×

तीनिएँ पाटेँ लागल रे! अनहद्-कर्षण घन गर्जइ ।
से सुनि मार भयङ्कर रे! विषय-मण्डल सकल भञ्जइ ॥
मातल चित्त-गजेन्द्रा धावइ ।
निरन्तर गगनान्त तुषेँ घोरइ ॥
पाप पुण्य दुइ तोड़ि साकड़ मोड़ि खम्भाथाना (स्थाना) ।
गगन अनहद लागि रे! चित्त पइस (ल) निर्वाणा ॥
महारसपाने मातल रे! त्रिभुवन सकल उपेखि ।
पञ्चविषयनायक रे! विपक्ष काहु ने देखि ॥
खर रवि-किरण-सन्तापेँ रे! गगनाङ्गन गइ (जा) पैसा ।
भनथि महित्ता मोहि डुबैते किमपि (किछु) न दृष्टा ॥

काय-वाक्-चित्त एहि तीनू पट्टमे लागल अनाहत घनघोर गर्जन करैत अछि, से सूनि भयङ्कर विषय-वासनादिरूप मार (काम) टूटि जाइत अछि। महीधरपादक चित्त-गजेन्द्र ज्ञानासवप्रमत्त भए दौड़ैत अछि, ऊपर उठैत अछि, सहस्रारस्थ शून्य-गगनकेँ सकल विकल्परूप चोकड़क सङ्ग घुमबैत (वा विकल्प घोरैत)[4] अछि अर्थात् शून्यगगनरूप जाँतसँ सकल विकल्पकेँ पीसैत अछि। पाप-पुण्य दूनू सीकड़केँ तोड़ि, अविद्यास्तम्भकेँ मोड़ि (ममोड़ि) शून्यगगनक अनाहतध्वनि (टाकलि[5])मे लीन भए चित्त मुक्तिमे, सामरस्य-समाधिमे, पैसि गेल। ओहि समाधिक सुखसँ उन्मत्त पञ्चविषय (शब्दस्पर्शादिक अनुभव)क विजेता चित्त सकल त्रिभुवनक (भोगक) उपेक्षा करैत अछि आ' आब ओकरा

१। सेन—पञ्च विषयरे नायक २। चगीको —विपथ ३। चगीको। शास्त्री—देखि
४। मैथिलीक 'घोरब' (एहिठाम चोकड़क सङ्ग घोरब) प्राप्त रहितहुँ चगीको (एहि गीत)क पा० टि० सँ 'घूर्ण' तेँ दूनू अर्थ देल।
५। तुलनीय आसामीक 'टकालि' शब्द 'a clicking noise'—चगीको (पा० टि०) द्रष्टव्य

हेतु विपन्नताक, प्रतिकूलताक, कोनो प्रश्ने नहि अछि। सभकें अनुकूले देखैत अछि। आब ओ चित्त कुण्डलिनी-योगक द्वारा सामरस्यक प्रखर ज्ञानरवि-किरणक आलोक पाबि शून्य गगनाङ्गनमे जा' पैसल। महीधर कहैत छथि, आब ओहि शून्यमे, चिन्मयीमे, डुबल हम किछु नहि देखैत छी।

भादेपाद

१ (३५)

एत काल हाँउ अच्छिलौँ स्वमोहेँ।
एवेँ मइ बुझिल सद्गुरुबोहेँ॥
एवेँ चिअराअ मोकु[1] णठा।
गअणसमुदे टलिआ पइठा॥
पेखमि दह दिह सव्वइ शून॥
चिअ विहुन्ने पाप न पुन्न॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पसिआ॥
भादे भणइ अभागे लइला[2]।
चिअराअ मइ अहार कएला॥

× × ×

एत काल हम छलौं स्वमोहें।
अबे हम बुझल सद्गुरुबोधें॥
अबे चित्तराज मोर नष्ट [ा]।
गगन-समुद्रे टरि [जा] पैस [ा]॥
पेखी दश दिश सबइ शून्य।
चित्त-विहीने पाप न पुण्य॥
वज्रिल देल मोहे लक्ष्य भनि।
मोजे आहारल गगने पसि॥
भादे भनइ अभागे लेला।
चित्तराज मोहि आहार कएला॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—मकु २। चगीको। शास्त्री, सेन—लइआ

एतेक काल हम मोहक सङ्ग छलहुँ, आब हमरा सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ बुझबामे आबि गेल। आब हमर कुचित्त नष्ट भए गेल, शून्यगगनमे टरि कए चल गेल, पैसि गेल। आब सभ दिशि शून्ये शून्य प्रतीत होइत अछि। आब चित्तक व्यापार रुकि गेल, वासना नष्ट भए गेल, स्वतः पाप-पुण्यक प्रश्ने नहि अछि। वज्रकुल वा कौल सम्प्रदाय हमरा लक्ष्य बुझाए देलक, विषयसभकेँ छोड़ि हम सहस्रारस्थ शून्यमे पैसि अमृत आहार (भोग) कएल। भादेपाद कहैत छथि—आब हम अविभाज्य परमाणुकेँ आत्मसात् कए लेने छी, आब हम चित्तराजहिकेँ आत्मस्थ कए लेने छी।

धामपाद

१ (४७)

कमल कुलिश माझेँ भइअ मिअली।
समताजोएँ जलिल[1] चण्डाली॥
डाह डोम्बीघरे लागेलि आगि[णी][2]।
ससहर लइ सिञ्चहुँ पाणी॥
न उ खरजाला धूम[3] न दिशइ।
मेरुशिखर लइ गअण पइसइ॥
दाढ़इ हरि हर बाह्म भड़ा।
फीटा हइ नवगुण शासन पड़ा॥
भणइ धाम फुड़ लेहु रे जाणी।
पञ्च नालेँ उठे गेल पाणी॥

× × ×

कमल कुलिश माझे भए मिलली।
समतायोगेँ (प)जरल चण्डाली॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—जलिअ २। चगीको। शास्त्री, सेन—आगि
३। चगीको। शास्त्री—धुम

डाँह डोम्बीघरे लागलि आँग (नी) ।
शशधर लइ (ए) सोँचह पानी ॥
न ओ खरज्वाला धूम न देख (ा)इ ।
मेरुशिखर लइ (ए) गगन पइसइ ॥
डाहइ हरि-हर ब्राह्म (ब्रह्म) भट्टा ।
फाटल होइ नवगुण शासन पट्टा ॥
भनइ धाम स्फुट लेहु रे ! जानी (नि) ।
पञ्चनाले उठि गेल पानी (नि) ॥

कमल कुलिशसँ तन्मध्यमे संयुक्त भेल अर्थात् शरीरस्था शक्ति शिवक मध्यबिन्दुमे (ताहि परमतत्त्वक सङ्ग) संयुक्त भेलीह (कमल योनिक प्रतीक आ' कुलिश लिङ्गक प्रतीक, योनि लिङ्गक मध्य भागमे संयुक्त भेल, किन्तु योनि-लिङ्ग कुण्डलिनी-स्वयम्भूलिङ्ग अर्थात् शक्तिशिवक स्थूल सङ्केत मात्र अछि)। एहि (कुण्डलिनी-) योग द्वारा चण्डालीक, अर्थात् कुण्डलिनीशक्तिक तेजोमय शरीर जाग्रत भए गेल। हुनक निवास, अन्तःस्थ अङ्गुष्ठप्रमाण मात्र पाञ्चभौतिक शरीर, ओहि (कुण्डलिनीक) तेजसँ विनष्ट भए गेल, वासनादिक दृष्टिएँ। ओकर प्रखर ज्वाला शान्त कोना भेल ? शरीरस्थ चन्द्रमण्डलक शीतल अमृतसँ। आब ओ ज्वाला प्रखर नहि रहल, कालिम विकारक लेश धूमो नहि नयनगोचर रहल'- मेरुशिखरक आश्रित भएकेँ ओ प्राणशक्ति शून्यगगनमे प्रविष्ट भए गेलीह (आ' पुनः गगनस्वरूप महाशक्तिस्वरूप धारण कए लेलन्हि)। आब तँ ओहि शक्तिक तेजसँ हरि-हर-ब्रह्मा, सभ विग्रहवान् देवतागण (वा मूत्रशुक्रविष्ठानाड़ी), दग्ध भए गेल छथि [भेदभाव जाइत रहल, एक मात्र तत्त्व बँचि गेल परमशिव (शिव-शक्ति, परस्पराश्लिष्ट आ' परस्पराभिन्न)] नवपवनरूप नवगुणक एवं इन्द्रियशासनक पट्ट फाटि गेल । धाम कहैत छथि—हे योगिन् ! स्फुट (रूपमे) जानि लएह, उक्त पाँचो तत्त्व वा व्यक्ति, हरिहरब्रह्मा (वा मूत्रशुक्रविष्ठानाड़ी), पवन आ' इन्द्रिय पाँच नाल (नाड़ि, द्वारा)क काज कएलक, जकर सहायतासँ अद्वैतक शीतलभावना-जल, सामरस्यक शीतल आह्लाद दैत, प्रवाहित भेल। ई सभ हरिहरादि तत्त्व प्रारम्भमे सहायक भेल, द्वारा भेल, किन्तु परिणाममे शक्ति संयुत शिवतत्त्वक आ' पुनः तद्रूपत्व-अभेदक वा सामरस्यक अनुभव शीतल आनन्द देलक। सएह अभिप्राय।

वीणापाद

१ (१७)

सुज लाउ ससि लागेलि तान्ती।
अणहा दाण्डी एकि[1] किअत अवधूती॥
बाजइ अलो सहि हेरुअवीणा।
सुनतान्तिधनि विलसइ रुणा॥
आलि कालि बेणि सारि सुणिआ[2]।
गअवर समरस सान्धि गुणिआ॥
जबेँ करहा करहकलेँ[3] चापिउ।
बतिश तान्तिधनि सअल विआपिउ॥
नाचन्ति बाजिल गान्ति देवी।
बुद्धनाटक[4] विसमा होइ॥

× × ×

सूर्य लौका शशि लागलि तन्त्री।
अनहत दण्डी एकीकृत अवधूती॥
बाजइ अरे! सखि! हेरुकवीणा।
सून-ताँतिध्वनि [धनि]विलसइ रुणा॥
आलि कालि दुइ सा रि सूनि।
गजवर समरस सन्धि गूनि॥
जबे करभा करभकले[*] चापल।
बतिस तान्ति-ध्वनि सकल विआपल॥
नाचैत बज्रिल गबैत देवी।
बुद्ध - नाटक विश्राम होइ॥

सूर्यमण्डलक आभासरूप लौका (तुम्बा) हमर वीणा (अन्तःसुखमय ज्ञानमयसंगीतक अभिव्यञ्जक नाड़ी-चक्र)क चन्द्राभासरूप तन्त्रीमे लागल अछि।

१। सेन—वाकि २। सेन—मुणेआ

३। चगोको। शास्त्री, सेन—करहकले

४। चगोको। शास्त्री—बुद्ध नाटक

अनाहत-वीणादण्डमे समस्त वासनाकेँ सुषुम्नाद्वारा लीन (लय) कए देल। आब हे सखि ! महामुद्रे ! हेरुकक वा शिवक वीणा बाजि रहल अछि, आय हम, वीणाधारी वीणापाद, शिवत्व प्राप्त कएल आ' हमर सामरस्यमय संगीतकेँ गुञ्जित करैत ई देह-चक्र नादहीन अछि। शून्य-तन्त्रीध्वनि रुणु-रुणु शब्द-विलास, वाक्-विलास, करैत अछि। अलि-कालि, स्वरव्यञ्जन वर्णमे सा रि ध्वनि सूनि, हमर चित्त-गजेन्द्र सामरस्यसन्धिक अनुभव कएल। तत्पश्चात जखन ओ गजवर सकल विषयरूप अन्य गजशिशुसभकेँ करभध्वंसक (विषय-गण-शिशुध्वंसक) ज्ञानप्रकाशसँ चापि देल, दमित कए देल, तखन समस्त बत्तीसहु नाड़ीरूप तन्त्रीमे नाद-ध्वनि व्याप्त भए गेल। आब वज्री, पुंचिह्नधारी शिवरूप साधक नाचि रहल छथि, हुनक अभिन्ना शक्ति गाबि रहल छथि (सामरस्यभाव व्यञ्जक ध्वनि व्यक्त कए रहल छथि) तथा बुद्धनाटक वा प्रबुद्ध शिवरूप साधकक आनन्दमयी लीला विश्रान्त भए रहल अछि।

चाटिलपाद

१ (५)

भवणइ गहण गम्भीर वेगेँ वाही।
दुआन्ते चिखिल मज्झे[1] न थाही॥
धामार्थे चाटिल साङ्कम गढ़इ।
पारगामि लोअ निभर तरइ॥
फाड्डिअ मोहतरु पाटि जोड़िअ।
अदअ दिढ टाङ्गी निवाणे कोहि [? ड़ि]अ[2]॥
साङ्कमत चड़िले दाहिण बाम मा होही।
नियड़ि बोहि दूर मा जाही॥
जइ तुम्हे लोअ हे होइब पारगामी।
पुच्छतु चाटिल अनुत्तरसामी॥

× × ×

भवनदी गहन गम्भीर वेगेँ वाही।
दूनू अन्ते [तीर] पिच्छड़, माझे न थाही॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन — माझे
२। चगीको। शास्त्री—कोरिअ। सेन—कोड़िअ

धर्मार्थे चाटिल बान्ह (पूल) गढ़इ ।
पारगामी लोक निर्भर तरइ ॥
फाड़ि मोहतरु पाट जोड़ि ।
अद्वय दढ़ टेङारी निर्वाण कोड़ि ॥
बान्ह (पूल) चढ़ि दहिन वाम न होअइ ।
निअर बोधि दूर न जाइ ॥
यदि तोहें लोक हे ! होएबह पारगामी ।
पूछह चाटिल अनुत्तर सामी [स्वामी] ॥

जगत् रूप नदी अथाह गम्भीर वेगसँ बहैत अछि, एकर दूनू तट, धर्म-अर्थ, पिच्छड़ अछि जाहिसँ एहि नदीमे उतरबे कठिन। मध्यमे जाइत जाइत तँ एहन विकट परिस्थिति आबि जाइत अछि जे थाह पाएब कठिन, कारण, विश्वक मध्यबिन्दु छथि रहस्यमय चिद्रूप। दूनू तटक, धर्म-अर्थक, समन्वयक हेतु चाटिल्लपाद एक पूल गढ़ैत छथि, ओ पूल थिक कौल साम्प्रदाय; एहि पूलपर चढि पारगामी लोकसभ निर्भर भए जगत्-नदीकें पार कए सकैत अछि। मोहतरुकें उपाड़ि, ओहि भवकें उदात्त शक्ति-अनुरागसँ आत्मसात् कए पट्ट (पीठस्थान)मे जोड़ि मिलाए लएह। अद्वय (शिवशक्ति-परस्पराश्लिष्ट परम अद्वितीय तत्त्व) रूप टेङाड़ीसँ मुक्तितरुक मूल कोड़ि निकालह, जाहिसँ आन्तरिक रहस्य ओकर बोधगम्य भए सकइ। कौलमार्गरूप पूलपर चढि दक्षिण-वाम उपचारक फेरिमे नहि पड़ह, निकटहिमे चित्-बोध प्राप्त होएतह, ओ छूटि नहि जाह, अधिक दूर नहि चल जएबह। हे श्रोतृगण ? जँ तों सभ पारगामी होअए चाहैत छह तँ अनुत्तर स्वामी (शिवतुल्य ईश) चाटिल्लपादकें पूछह।

कम्बलाम्बरपाद

१ (८)

सोने भरिती करुणा नावी।
रूपा थोइ नाहिक[1] ठावी ॥

१। सेन—महि के

बाहतु कामलि गअण उवेसेँ।
गेला[२] जाम बाहुड़इ[३] कइसेँ॥
खुण्टि उपाड़ी मेलिलि काच्छि।
बाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि॥
माङ्गत चड्हिले चउदिस[४] चाहअ।
केड़ुआल नाहि के कि[५] बाहबके पारअ॥
वाम दाहिण चापी मिलि मिलि माङ्गा।
बाटत मिलिल महासुहसाङ्गा॥

× × ×

सोनेँ भरती करुणा नाव।
रूपा थापए नाहक [नहि अछि] ठाम॥
खेबह कम्बल [कामालि] गगन-उदेशेँ।
गेल जन्म बहुरइ कइसेँ॥
खुट्टा उपाड़ि खोलल डोरी।
खेबह कम्बल [कामालि] सद्गुरु पूछि॥
माङि [वा मार्ग][६] [पर] चढ़ने चहुदिस ताकए।
करुआरि नाहि कै की खेबा कऽ पारए॥
बाम-दाहिन चापि मिलि मिलि माङि [मार्ग]।
बटे मिलल महासुख सङ्ग॥

करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका हमर शून्य-स्वर्णसँ (स्वर्णसदृश चकमक शून्यताविमर्शसँ) जड़ल अछि, भरल अछि, ओहिमे रूपसंवेदना वा रूप-धातु रखबाक स्थान नहि, अवकाश नहि, अथवा नाहक ओहिपर रूप-वेदनादिक स्थापन। हे कम्बल ! वा हे कामालि ! शून्यस्वरूपिणीक प्राप्तिक हेतु करुण-चित्त-नौकाकेँ खेबि चलह, ई विश्वास राखह जे एहि पारगमनसँ जे जीवन बीति जएतह से कथमपि पुनः नहि आबि सकैत छह, निश्चित तोँ मुक्त भए जएबह।

२। चगीको। शास्त्री, सेन—गेली ३। चगीको। शास्त्री—बहु उइ। सेन—बहुड़इ
४। चगीको। शास्त्री—चउ दिस ५। चगीको। शास्त्री, सेन—केँ कि
६। 'माङ्ग'कअर्थ मार्ग सं० टी० मे, 'माङि' [नावक भागविशेष] अधिक समीचीन।

ई चित्त–नौका जाहि आभास–दोषमे बान्हल छलह से दोष–खुट्टी आब उपड़ि गेलह, जाहि अविद्याक डोरसँ बान्हल छलह से आब ढील भए गेलह, तखन हे कम्बल ! [कामालि !] तोरा चित्त-नौका-वाहनमे कठिनता किएक होएतह ? सद्‌गुरुकेँ पूछि खेबि चलह। सामान्यतया लोक एहि नौकाक माङिपर [वा मार्गपर] चढ़ि भीत भए चारूकात आश्रय तकैत रहैत अछि। करुआरि [गुरु-पदेश, दैवी–कृपा] नहि रहलासँ के कोना पार कए सकैत अछि ? तेँ गुरुक आश्रयसे, गुरु–देवताक निर्देशकृपासँ चित्त-नौकाकेँ जीवन–नदीमे वा प्राण-वाहमे आगाँ बढ़बह [चित्तकेँ विकसित कए चितिरूपमे परिणत करह]। एहि स्वनिर्दिष्ट शङ्का–विचारक क्रममे कम्बलाम्बरपाद स्वयं कहैत छथि—उक्त विषय-सभकेँ ध्यानमे राखि हम आगाँ बढ़लहुँ, वामदक्षिण मार्गसभकेँ दबाए अपन कौलसाधनाक अनुसरण कए नौका–माङिक वा मार्गक अवलम्बन कएल, बढ़ैत बढ़ैत अनायास बाटहिमे महासुख [–प्रदात्री शक्ति वा सामरस्य–भाव] सङ्ग भए गेल।

ढेण्ढणपाद

१ (३३)

टालत मोर घर नाहि पड़वेशी[1]।
हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी ॥
वेङ्गस साप[2] बढ़हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि बेण्टे समाअ[3] ॥
बलद बिआएल गविआ बाँझे।
पिटा दुहिअइ ए[4] तिना साँझे ॥
जो सो बुधी सोध निबुधी।
जो सो[5] चौर सोइ साधी ॥
निते निते सिआला सिहे सम[6] जुझअ।
ढेण्ढणपाएर गीत विरले[7] बुझअ ॥

× × ×

१। चगीको। शास्त्री, सेन—पड़वेषी २। चगीको। शास्त्री—वेङ्ग संसार। सेन—वेग संसर
३। चगीको। शास्त्री—षामाअ ४। चगीको। शास्त्री, सेन—दुहिए ए
५। चगीको। शास्त्री, सेन—षो ६। चगीको। शास्त्री, सेन—षिआला षिहे षम
७। चगीको। शास्त्री—विचरिले

नगरे॰ मोर घर नाहि प्रतिवेशी ।
हाँड़ मे भात नाहि नित आवेशो ॥
वेङ (वेग)सँ साप काटल जाए ।
दूहल दूध की (स्तन-) वृन्ते समाए ॥
बळ ड़)द बिआएल गैआ बाँझे ।
पीठा दुहल जाए ए! तीन साँझे ॥
जे से बुद्धि सेहे (शुद्ध) निबुंद्धि ।
जे से चोर सेहे साधु (धि) ॥
नित नित शृगाला सिंहे सम जुझए ।
ढेण्ढणपादक गीत विरले बुझए ॥

उब नगर सहस्रार-मेरुशिखर हमर निवासस्थान; ओहिठाम अद्वैत परमशिवरूपमे हम एकसरे छी, केओ पड़ोसी नहि अछि। अढ़ियामे भात नहि, अर्थात् अपन शरीरमे ओझरएने परिपक्व, प्रबुद्ध, चित्त नहि, चित्त चितितादात्म्य प्राप्त नहि कए सकए, तें योगीन्द्रकें नित्य शून्यस्वरूपिणीक आवेश राखए पड़ैत छन्हि (अथवा चित्त नित्य विषयक आवेशमे डुबल रहैत अछि)। सापे वेङ्गसँ काटल जाइत अछि, अर्थात् चित्ते काय-वाक्सँ खण्डित (नष्ट) कएल जाइत अछि (अथवा व्यङ्ग शून्यरूपे जेना कुचित्त-सर्पसँ दष्ट हो, तहिना अद्भुत प्रतीत भए रहल अछि)। दूहल दूध पुनः स्तनाग्रमे कोना प्रवेश करए? अर्थात् योगीन्द्रक चित्त वा आत्मा पुनः अपन उद्गम शून्यमयी महामुद्रामे प्रविष्ट भए रहल अछि, ई आश्चर्यक गप्प। बलद प्रबुद्ध चित्त (बलद, बड़द रहितहुँ) ज्ञानरूप सन्तान प्रसूत कएलक आ' गाय बन्ध्ये रहल अर्थात् शून्य नैरात्माक प्रसवक प्रश्ने नहि। अरे! देखह तीनू साँझ शरीरस्थ पीठक दोहन करैत छी, शक्तिकें आकर्षण कए आत्मलीन करैत छी। एहि अवस्थामे बुझब, नहि बुझब दूनू एके रङ्ग। विषयरूप परद्रव्यापहारी चित्त-चोर आ' समाधिस्थ चित्त-साधु दूनू एके रङ्ग। आब ई साक्षात् अनुभव होइत अछि जे नित्य प्रतिनित्य सिआर सिंहसँ लड़ैत अछि अर्थात् संसरणशील चित्त सबल भए, स्थिर भए, अद्वयक, अद्वितीय परमशिवक प्रभुता, छिनए चाहैत अछि। ढेण्ढणपादक एहि गीतक आशय विरले बुझए।

८। टाल—नगर [बा०], चक्र [शास्त्री] प्रायः आलङ्कारिक।

ताड़कपाद

१ (३७)

अपणे नाहिँ सो[1] काहेरि शङ्का।
ता महामुदेरी टुटि गेलि कङ्खा॥
अनुभव सहज मा भोल रे जोइ।
चौकोटिविमुका जइसो तइसो होइ॥
जइसने अछिलेस[2] तइसन अच्छ।
सहज पिथक जोइ भान्ति मा हो वास॥
बाण्डकुरुण्ड सन्तारे जाणी।
वाक्पथातीत काँहि वखाणी॥
भणइ ताड़क एथू[3] नाहिँ अवकाश।
जो बुझइ ता गलेँ गलपास॥

× × ×

अपने नाहि तँ ककर शङ्का।
से महामुद्रा, टुटि गेल कांक्षा॥
अनुभव सहज न भूल रे योगि (न्)!
चौकोटि-विमुक्ता जइसे तइसे होइ॥
जइसने छलह तइसन छह।
सहज-पृथक् योगि (न्) भ्रान्ति न हो वास॥
बटुआ—पौती सन्तारे जानी।
वाक्पथातीत काहि बखानी॥
भनइ ताड़क एत नहि अवकाश।
जे बुझइ तसु गले गलपाश॥

अपन (शरीरक) जखन शङ्का (चित्तमे) नहि तँ आन ककर चिन्ता? ओ महामुद्रा तेहन छथि जे हमर सभ कामना चल गेल, आब हम हुनकहिमे

१। सेन-मो २। सेन। शास्त्री—अछिले स। चगीको—इछिलेसि
३। चगीको—एथु। सेन—एषु

लीन भए सन्तुष्ट छी। हे योगिन् ! सहज-सामरस्यक अनुभूतिकें बिसरह नहि, जेना तेना चतुष्कल विषय-भण्डारसँ, संचित कर्मकोपसँ, मुक्त भए जाह। ई बुझह जे तोहर आत्मा नित्य तत्त्व, सभ दिन एक रूप रहएवाला, छह। हे योगिन् ! एहि सहज कौलसाधनासँ धोखहुसँ फराक नहि होअह। भवसागर पार करबामे अपन पाथेय (तत्त्वज्ञान) दिशि ध्यान रखबह। कतेक कहिअह तोरा, अवाङ्मनोगोचर ककरा बुझाओल जाए ? एहि साधनाक रहस्यमे पैसबाक अवकाश सभक हेतु नहि, जे एकर मर्म बुझत तकर गरमे गर-फाँस पड़ि जाएत, तकरा हेतु ई संसार फाँसी जकाँ बन्धन प्रतीत होएत—ई ताड़कक कहब छन्हि।

कङ्कणपाद

१ (४४)

सुने सुन मिलिआ जबें।
सअल धाम उइआ तबें॥
आच्छहुँ चउखन (ण)[1] संबोही।
माझ निरोहें अणुअर बोही॥
बिन्दु णाद ण हिएँ पइठा।
आण चाहन्ते आण विणठा॥
जथा आइलेसि[2] तथा जान।
माझे[3] थाकी सअल विहाण॥
भणइ कङ्कण कलअल सादें।
सर्व्व विचुरिल तथतानादें॥

× × ×

सूने सून मिलित [।] जबे।
सकल धाम उदित [।] तबे॥

१। चगीको, सेन। शास्त्री—आच्छहुँ चउ खण
२। चगीको। शास्त्री, सेन—जथाँ आइलेॅसि
३। चगीको। शास्त्री, सेन—मासं (घँ)

छी [हम] चउखन संबोधी।
माझ - निरोधें अनुत्तर बोधी ॥
बिन्दु नाद न हिये पइसा ।
आन देखैते आन विनष्टा ॥
यथा अएलह तथा जान [गमन] ।
माझे रहि सकल विहान [विजहीहि] ॥
[माझे बसइ सकल विहान (प्रभात)] ॥
भनइ कङ्कण कलकल - शब्दें ।
सब विचूरल तथता - नादें ॥

शरीरस्थ शून्य जखन ब्रह्माण्ड-शून्यमे मिलित भए गेल, तखन सकल अनुत्तर धर्म उदित भए गेल। हम सर्वदा संबोधिमे, तुरीयमे लीन रहैत छी, मध्य-निरोधसँ, मध्यविकास भेलापर, हम परम-शिवरूप बनि गेल छी। बिन्दु-नाद हृदयङ्गम नहि, तेँ व्यर्थ बूझि पड़ैत अछि। एक दिशि ध्यान गेलासँ दोसर दिशि नष्ट भए जाइत अछि (नाद-बिन्दु दिशि गेलासँ समाधिए टूटि जाइत अछि)। जहिना अएलह (आत्मरूपमे) तहिना चल जएबह। मध्यमे, शक्तिकेन्द्रमे, चित्त रखला पर आब अन्य तत्त्वकेँ छोड़ह अथवा ई बुझह जे मध्यसमाधिसँ सगरो प्रभातकालीन प्रकाश प्रतीत होएतह। कङ्कणपाद कहैत छथि—तथतानादसँ (शिवक 'तत्'-रूपतानादसँ[४], विमर्श-शक्तिस्वभाव-नादसँ) सभ विचूर्ण भए गेल, अविद्याक समस्त सृष्टि समाप्त भए गेल।

जयनन्दीपाद

१ (४६)

पेखु सुअणे अदशे जइसा।
अन्तराले मोह तइसा॥
मोहविमुक्का जइ मणा।
तबेँ तुटइ अवणागमणा॥

४। "—— in the form of the 'thatness' (tathatā) of all entities or as pure consciousnes;."—A. I. T. B.—P. 18
संग-संग, 'सोहं' नाद—विमर्शनाद अभिप्रेत (द्रष्टव्य पाछाँ विमर्श-लक्षण)।

न उ दाढ़इ न उ तिमइ न च्छिजइ ।
पेख लोअ मोहे बलि बलि बाझइ ॥
छाआ माआ काअ समाणा ।
बेणि पाखेँ सोइ विणाणा[1] ॥
चिअ तथतास्वभावे षोहइ ।
भणइ जअनन्दि फुड़ण ण होइ ॥

× × ×

पेखु सपने अादर्शे जइसा ।
अन्तराले मोह तइसा ॥
मोहविमुक्ता यदि मना ।
तबे टुटइ आवागमना ॥
ने ओ जरए ने ओ भीजए ने छेदल जाए ।
पेख लोक मोहेँ बलि बलि बाभए ॥
छाया माया काय समाना ।
दुइ पक्षे सोइ विज्ञाना ॥
[दुइ पक्षे सएह नाना[2]] ॥
चित्त तथतास्वभावे सोहइ ।
भनइ जयनन्दि स्फुरण न होइ ॥

देखह, स्वप्न वा दर्पणमे जेना तहिना चित्तक अन्तरालमे भ्रमात्मक मोह, स्वप्नमे वा दर्पणमे यथार्थ-प्रतिविम्बमात्र अयथार्थ आपाततः सत्य प्रतीत होइत अछि, तहिना प्रतीत विश्वक मोह अछि। जँ मन मोह-मुक्त भए जएतह तँ जन्म-मृत्यु-बन्धन टूटि जेतह। आत्मा शिवरूप अजर अछि, जलप्रवेशयोग्य नहि अछि, अछेद्य अछि, किन्तु लोक मोहसँ ओकर स्वरूप नहि चिन्हैत अछि आ' विषयवासनाक मोहसँ अपनाकेँ नष्ट कए ओहिमे ओझराए जाइत अछि। छाया [शिवक, प्रकाशक आभासमयी शक्ति], माया [बन्धनग्रस्त करए बाली] आ' काया तीनूमे वस्तुतः तादात्म्ये अछि, केवल आपाततः भिन्नता प्रतीत होइत

१। चगौको—वि णाखा
२। द्रष्टव्य पूर्व पा० टि०।

अछि। वाम–दक्षिण दुहू मार्ग परिणाममे एही विज्ञानपर जाइत अछि [अथवा दूनू मार्गक अनुसार तीनू एकहि परमशिवक नाना रूप अछि[३]]। जयनन्दीपाद कहैत छथि—हमर चित्त आब तथतास्वभावक सङ्ग, परम शिवतास्वभावक अर्थात् विमर्शशक्तिक[४] सङ्ग शोभित अछि, अहन्ताक एहि स्थितिमे किछु फूरि नहि रहल अछि, 'नेति नेति'क मूकास्वाद होइत अछि।

तन्त्रीपाद

१ (२५)[१]

धर्मोदयः पादाधिष्ठानं वज्रपदं नादः ।
पञ्चक्रमं वयित्वा तन्त्रिणः पटो विमलः ॥१॥
अहमेव तन्त्री स्वयमेव तानं ।
वितानं [च] स्वयमज्ञातलक्षणं ॥ध्रु०॥
सार्धत्रिहस्तं गृहे वेममुक्तं त्रिवृतं ।
गगनं पूर्णं स हि तन्त्रवयनं ॥२॥
अनाहतो वेमवरशब्दो हि गूरूपदेशेनाविरहितं ।
द्वे स्थिती छित्त्वा सूत्राणि व्यावृत्य दृढं प्रसारितानि ॥३॥
मणि गतः शून्यतया लक्षणशून्यतासारं ।
वयन [जाल]रसस्तन्त्री मोहजालमुक्तः ॥४॥

× × ×

धर्मोदय पादाधिष्ठान, वज्रपद नाद ।
पञ्चक्रम बीनि तन्त्रीक पट विमल ॥
हमहि तन्त्री अपने तानी ।
भरनी स्वयं अज्ञातलक्षण ॥

३। छायामे कोष्ठान्तर्गत पाठक अनुसार, तें ओ द्रष्टव्य।

४। विमर्शशक्तिकें शिव(प्रकाश)क स्वभाव मानल जाइत अछि—'प्रकाशश्च विमर्शस्वभावः'—पराप्रवेशिका पृ० १

१। "The Caryā and the Sanskrit Commentary (save the last two verses) are lost which are put here in Sanskrit retranslation from Tib. version appended at the end of this work."—चगीको (पृ० ८३) पा० टि०

साढ़े तीनिहाथक, गृहमे परतानमुक्त त्रिवृत्त ।
गगन पूर्ण, ओएह पट तन्त्रवयन [बीनब] ॥
अनाहत परतान—वरशब्द गुरुपदेश सँ अविरहित ।
दुइ [सूतक] बान्हि काटि, सूत घुमा दृढ़ पसारल ॥
मणिमे जाए शून्यता सङ लक्षण शून्यतासारमे ।
वयन [जाल] रस—तन्त्री मोहजालमुक्ता ॥

धर्मोदय भेल अर्थात् विमर्शस्वभावक स्फूर्त्ति भेल। नादक अनुसंधान-रूप वज्रपदक अर्थात् शिवपदक प्राप्ति भेल। गुरुक पञ्चक्रमोपदेशरूप सूतकेँ बीनि, तन्त्रीक पट विमल भए गेल अर्थात् चित्तपट विशुद्ध भए गेल, विकल्पहीन भए गेल। हम स्वयं जोलहा छी, तानी सेहो हमहि छी अर्थात् हमर आत्मा अछि तानसमान मूलरूप। भरनी जे शक्ति तनिक लक्षण अज्ञात अछि। एहि जगद्रूप घरमे ई साढ़े तीनि हाथक शरीर आब परतानसँ मुक्त अछि, एहिपर आब चित्तविशुद्धीकरणरूप बिनबाक प्रक्रियाक प्रयोजन नहि। आब ई शरीर अपन शरीरत्वके छोड़ि शून्यस्वरूप, पूर्णाहन्तास्वरूप, विमर्शस्यरूप पूर्णताकेँ प्राप्त कए गेल अछि। आब ओ चित्त जे एहि रूपकेँ प्राप्त कएने अछि सएह तँ थिक तन्त्रवयन अर्थात् सूतक बानि। हृदयस्थित अनाहतनादे तँ परतान [बि़र]क शब्दविशेष थिक जे गुरूपदेशसँ कखनहुँ विरहित [फराक] नहि रहैत अछि। तानक आधार-भूत सूत जे खुट्टीमे बान्हल रहैत अछि, तहिना जे एहि शरीरस्थ प्राण तथा अपा-नक तन्तु वा इड़ा-पिङ्गलाक तन्तु, तकरा हम एहि दृष्टिएँ काटल जे वाम-दक्षिण श्वास-नाड़ीक गतिकेँ अवरुद्ध कए मध्यविकास कएल, सुषुम्नास्था ब्रह्मनाड़ीक विकास भेल वा कुम्भक द्वारा वायु मध्यस्थितिमे अँटकि गेल। तत्पश्चात् कुण्ड-लिनीसूत्ररूप सूतकेँ विकसित कएल। मणिपूरचक्रमे शून्यताशक्तिक प्रतिरूप कुण्डलिनीमे, जनिक लक्षण नहि अछि ताहिशक्तिमे, मीलि वयनजालकरससँ [विमर्शमय स्वभावक अन्तरङ्ग चित्तकेँ बनएबाक जनित] सामरस्य-विभोर तन्त्री [जोलहा वा तन्त्रीपाद] आइ अन्य जालसँ, मोहजालसँ, विमुक्त भए गेल छथि।

शान्तिपाद

१ (१५)

सअसम्वेअणसरुअविआरेँ अलक्ख लक्खण न जाइ।
जे जे उजूबाटे गेला अनाबाटा भइला सोइ॥

फुलें फुल मा होइ रे मूढ़ा उजूबाट संसारा।
बाल तिल[1] एकु बाकु ण भूलह राजपथ[2] कन्धारा ॥
मायामोहसमुदा रे अन्त न बुझसि थाहा।
अगे नाव न भेला दीसइ[3] भन्ति न पुच्छसि नाहा ॥
सुना पान्तर उह न दीसइ भान्ति न वाससि जान्ते।
एथ[4] अटमहासिद्धि सिभइ उजूबाट जाअन्ते ॥
बाम दाहिण दोबाटा च्छाड़ी शान्ति बुलथेउ संकेलिउ।
घाट न गुमा खड़ तड़ि ण होइ आखि बुजिअ बाट जाइउ ॥

× × ×

स्वसंवेदनस्वरूपविचारें अलक्ष्यलक्षण न जाइ।
जे जे सोझ बाटे गेला अनबाटा भेला सोइ ॥
कुले कुले न हाअह रे मूढ़ा ! सोझ बाट संसारा।
बाल ! तिल एक वाक् न भूलह राजपथ कनकधारा ॥
माया-मोह-समुद्रा रे ! अन्त न बूझसि थाहा।
अग्रे नाव ने भेला देखिअ, भ्रान्ति न पुछसि नाथा ॥
सुना प्रान्तर (पाँतर) ऊह न देखिअ, भ्रान्ति न बासह जैते।
एत अष्टमहासिद्धि सिझइ सोझबाट जेते ॥
बाम दहिन दो बाटा छाड़ि शान्ति बूलथि संक्रीड़थि।
घाट न गुल्मा खड़-तर न होइ, आँखि मूनि बाट जाथि ॥

स्वसंवेदन (आत्मबोध) (आत्म-प्रत्यभिज्ञा)क स्वरूप विचार कएलास शान्तिपाद अलक्ष्यलक्षणयुक्त तत्त्व दिशि नहि जाइत छथि। जे जे योगी साधक एहि सरल मार्ग, कौलमार्गसँ गेल छथि, से सभ बिनु बाटक, बाटसँ मुक्त, भए गेलाह। एहि सम्प्रदायसँ ओहि सम्प्रदायमे ,एना बदलि बदलि नहि चलह, एक सम्प्रदाय कौल सम्प्रदायकेँ, सोझ सम्प्रदायकेँ, एहि जगतमे पकड़ने रहह हे बालयोगिन् ! तिलो भरि ई वाक्य नहि बिसरह जे ई पथ राजपथ, स्वर्णपथ-सदृश पथ थिक। माया-मोहक समुद्रक अन्तमे कतहु थाह नहि भेटतह।

१। चगीको, सेन। शास्त्री—भिण २। चगीको, सेन। शास्त्री—राज पथ
३। चगीको। शास्त्री, सेन—दीसअ ४। चगीको। शास्त्री, सेन—एषा

एहि अगम्य समुद्रमे आगाँ नावो करुआरि नहि देखैत होएबह, तथापि तों भ्रान्त भए कोनहु गुरुअहुकें नहि पुछैत छहुन्ह। ओएह देखह, शून्य प्रान्तर (पाँतर) देखैत नहि छहक ? आगाँ बढ़ह, भ्रन्ति छोड़ह। कौल मार्गक, सरल पथक, अनुगामी भेने एहि संसारहिमे अष्टमहासिद्धिलाभ भए जेतह। वाम-दक्षिण, दूनू पथ, छोड़ि शान्ति विहार कए रहल छथि। एहि मार्गमे कतहु घाट, गुल्म, खढ़-तर आदि प्रतिबन्धक नहि (पतनक डर नहि), आँखि मूनि शान्ति-पाद जाए रहल छथि।

२ (२६)

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।
आँसु धुणि धुणि निरवर सेसु॥
तउ से हेरुअ[१] ण पाविअइ।
सान्ति भणइ किण स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुणे अहारिउ।
पुन लइआ[२] अपणा चटारिउ॥
बहल बढ[३] दुइ मार न दिशअ।
सान्ति भणइ बालाग न पइसअ॥
काज न कारण ज एहु जुगति।
सअसँवेअण बोलथि सान्ति॥

× × ×

तूर धूनि धूनि अंशु रे अंशु।
अंशु धूनि धूनि निरवयव शेष॥
तौओ हेरुक न पाबिअइ (प्राप्यते)।
शान्ति भनइ, की ओ भाविअइ (भाव्यते)॥
तूर धूनि धूनि सूने आहारल।
पुनि लए अपना (कें) चाटल॥

१। चगीको। शास्त्री—तउसे हेरुअ। सेन—तउ षेहे रुअ
२। चगीको। शस्त्री—लइआँ। सेन—सइआँ
३। चगीको। शास्त्री—बद। सेन—बाट

बहल बढ़ल दुइ मार्ग न देखिअ।
शान्ति भनइ बालाग्र [ो][४] न पइसए ॥
काज न कारण जे एहु जुगति।
स्वसंवेदन बोलथि शान्ति ॥

तूर धूनि धूनि अंश –अंश कएल गेल अर्थात् शरीर, वाक्, चित्तक साधना करैत करैत बिन्दुरूपमे ओहिसभक अनुभूति होअए लागल, पुनः ओहि अंश-परमांशहुपर मनकेँ बैसबैत बैसबैत ओ निराकारपर केन्द्रित भए गेल, अंश-परमांश परिणाममे निराकारब्रह्ममे परिणत भए गेल। तथापि, शान्ति कहैत छथि, परम शिव (हेरुक)क प्राप्ति नहि भए सकल, तेहन सन बूझि पड़ैत अछि, वस्तुतः हुनक स्वरूपक भावन होएबो कोना करए, ओ तँ भावित–भाव्य तत्त्वसँ अतीत छथि, शून्यरूपिणीमहतीशक्तिसँ संयुत तेजस् मात्र छथि। तेँ परम-शिवत्व प्राप्त करबाक हेतु हम शान्तिपाद ओहि शून्यमयी शक्तिकेँ आहृत कए आत्मसात् कए लेल, सएह तँ भेल आत्मामे विमर्श शक्ति, अहन्ताज्ञान, जगाएब। मुदा परिणाममे हमरा इहो अहन्ता नहि रहल; हम, शान्तिपाद, सभकेँ अन्तर्लीन कए लेल, स्वाद लए चाटि लेल। वाम–दक्षिण मार्ग, घन आ' बढ़ल–चढ़ल मार्ग, हमरा नहि देखि पड़ैत अछि, ओकर अनुसरण केनिहारसभकेँ तँ उक्त रहस्य (शैव दर्शन) केशाग्रो भरि ने पैसए। कार्य–कारण–सम्बन्धसँ विहीन जे ई युक्ति (वा योग) से तर्कगम्य नहि, स्वसंवेदन(स्वानुभूति)मात्रैकगम्य थिक, शान्तिक मत सएह छन्हि।



४। पूर्व द्र० गीत का० २

पारिभाषिकशब्दानुक्रमणिका

एहि अनुक्रमणिकामे चर्य्यागीतमे आएल पारिभाषिक शब्दसभकेँ प्रकरणमे बैसाए, ताहिमे अक्षरानुक्रमेण राखि, शब्दक आगाँमे कोष्ठमे ताहि गीतक संकेत देल गेल अछि जाहिसँ ओ शब्द आएल अछि। स० आदि कविक नाम-संकेत अछि तथा १,२ आदि हुनक गीतक क्रमसंख्या अछि। स्वतः स०१क अर्थ भेल सरहपादक गीत संख्या १, एहि प्रकारेँ देखलासँ एहि पोथीमे गीत तथा ओ पारिभाषिक शब्द भेटि जाएत।

समानता-चिह्नसँ पारिभाषिक शब्दक छायार्थ तथा पुनः ओकर पारिभाषिक अर्थ दए देल अछि। पारिभाषिक अर्थक आगाँमे ओहि अनुच्छेदक संख्या देल अछि, एहि पोथीक भूमिकाक जाहि अनुच्छेदमे ओहि अर्थ, वस्तु वा तत्त्वक विचार भेटत। कतहु कतहु अर्थकेँ प्रामाणिक सूचित करबाक हेतु संस्कृतछायादिक निर्देश कएल गेल अछि। संकेतसभक प्रयोग कएल गेल अछि, जकर विवरण नीचा प्रस्तुत कएल जाइत अछि। संस्कृतछाया तथा टीकाक प्रसंग एक कथ्य ई जे केवल एकेटा छाया तथाटी का भेटैत अछि—डा० बागचीक संस्करणमे संस्कृत छाया तथा डा० बागची-म० म० शास्त्री वा सेनक संस्करणमे देल एक संस्कृत टीका। तेँ जतए संस्कृत छाया वा टीकाक निर्देश अछि ततए ई बुझबाक थिक जे शब्द लग कोष्ठमे निर्दिष्ट गीतक संस्कृत छाया तथा टीका अभिप्रेत अछि तथा ओ छाया-टीका उक्त ग्रन्थमे ओहि निर्दिष्ट गीतक नीचामे भेटैत अछि। किन्तु, (एहि अनुक्रमणिकामे) पारिभाषिक शब्दक लगमे ओहि संस्करणसभक गीतसंख्या नहि अछि, एहि प्रस्तुत पुस्तकमे जे हम गीत संख्या देल अछि से संख्या अछि। तखन उक्त दूनू संस्करणमे निर्दिष्ट गीत कोना

भेटत ? एहि समस्याक समाधान अनायास भए जाएत जखन एहि पोथीमे निर्दिष्ट गीतपर ध्यान जाएत; कारण, एहिमे हम प्रत्येक गीतक ऊपरमे, कोष्ठमे, उक्त तीनू संस्करणमे आएल ओहि गीतक संख्या दए देल अछि। तेँ ओहि संस्करण-सभकेँ देखबाक क्रम ई रहत जे पहिने एहि पोथीमे पारिभाषिक शब्द लग निर्दिष्ट संकेतक अनुसार गीत ताकि लेल जाए तखन, जँ तुलनाक प्रयोजन हो, ओहि गीतक ऊपरमे कोष्ठमे देल संख्या उक्त संस्करणसभमे देखल जाए, अनायास ओ गीत भेटि जाएत ।

एहि अनुक्रमणिकामे जे संकेतसभ प्रयुक्त भेल अछि तकर विवरण एहि प्रकारेँ बुझबाक थिक :—

१। कविक नाम-संकेत—नाम संकेतक विवरण स्वतन्त्रे भेटत एहि पोथीक समस्त संकेतक विवरणमे। कविक नाम संकेतक आगाँक संख्या एहि पोथीमे ओहि कविक ओहि गीतक क्रम संख्या थिक, जाहिसँ स०१ संकेतक अर्थ सरहपादक गीतक संख्या १ बुझबाक थिक, तात्पर्य ई जे ओ पारिभाषिक शब्द सरहपादक गीत सं० १ मे भेटत, एवम्प्रकारेँ पारिभाषिक शब्दकेँ गीतमे ताकल जाए सकैत अछि।

२। =चिह्नक अर्थ एतबे जे पूर्व आएल शब्दक छाया अर्थ आगाँ आएल शब्द भेल तथा पुनः तकर पारिभाषिक अर्थ तकर आगाँक शब्द भेल।

३। अर्थक आगाँ कोष्ठमे आएल संख्या—प्रस्तुत पोथीक भूमिकामे सम्पर्कित अनुच्छेदक संख्या।

४। द्र०—द्रष्टव्य।

५। सं० टी०—संस्कृत-टीका-भाग ओहि गीत वा गीतसभक।

६। सं० छा०—संस्कृतछाया [श्लोकमय] जे 'चर्यागीतिकोष'मे प्राप्य।

७। बं० टी०—म०म० शास्त्रीक संकलनक उत्तरभागमे बंगला टीका।

८। च० गी० को०—चर्यागीतिकोष

९। ता० बौ० सा० सा०—तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य

१०। सं० श० को०—संस्कृत-शब्दकोश [आप्ते महाशयक]

११। I. B. I.—The Indian Buddhist Iconography.

१२। पा० टि०—पादटिप्पणी

१३। तु०—तुलनीय

१४। पृ०—पृष्ठ

१५। ऐजन—ई सूचित करब जे जे ओहिसँ ठीक पहिने आएल अछि सएह।

१६। प्र०—प्रकाशः। सू०-सूत्र।

पोथीसभक विशद परिचय पुस्तकसूचीमे प्राप्य, ई केवल पारिभाषिक शब्दसूचीक संकेत-विवरण भेल। पारिभाषिक शब्दसभकेँ यथासाध्य विषयक दृष्टिसँ वर्गसभमे बाँटि अर्थ प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

परमसत्य

अचिन्त [स० १]=अचिन्त्य=परमात्मा वा परमशिव [६३]।

अजरामर [स० १, वि० १]=मुक्त [११७,१२१-१२५]।

अणुअर [क० १]=अनुत्तर [६२]=जाहिसँ ऊपर कोनो सत्ता नहि।

अदअ [भु० ८, चा० १]=अद्वय=परस्पराभिन्न शिवशक्ति [८१]।

अनुत्तर [चा० १]——द्र० अणुअर।

अपा [स० २, आ० १]=आत्मा [८४–८६]।

अमिअ [भु० २]=अमृत=सहस्रारस्थ मधु [१०६] वा सामरस्यानन्द [११६]।

अमिआ [स० ४]=अमृता=अमृत [द्र० अमिअ]।

अलक्खलक्खण [दा० १, शा० १]=अलक्ष्यलक्षण [६३]।

आसव [का० २]=मद्य=अमृत। द्र० अमिअ।

एकाकारे [का० ४]=एकाकार भए=समरस भए [६३–६५]।

करुण शून [का० ६]=करुणा-शून्य=शिवशक्ति [८३]।

खसमे [श० २]=गगन समान=शून्य समान [७५]।

गअन [भु० ७]=गगन=शून्यरूप शिवशक्ति [७४]।

जिणउरा [डो० १]=जिनपुरा=महासुखपुर [सं० टी०]=परलोक, सामरस्यक अवस्था [११५]।

जिनउर [का० १, का० ५]=जिनपुर। द्र० जिणउरा।

धाम [स० १, का० ८, क० १]=अनुत्तरधाम [६३]=परमपद।

परम निवाणे [दा० १]=परम निर्वाणमे=परम मोक्षमे [१३२]।

परम मोख [का० ४] = परम मोक्ष = परमा मुक्ति [१३२]।

पूर्णचन्द्र [का० ६] = षोड़शकलायुक्त बोधिचित्तचन्द्रमण्डल [सं० टी०]
= सहस्रारस्थ षोड़शीक अन्तरङ्ग चित्त वा प्राण [२७३,२२०]।

बोहि [स० २, चा० १] = बोधि = बोधिचित्त = परमशिव [८४]
= प्रकाश–विमर्श [६३]।

बोही [क० १] = बोधी = बोधिचित्त [द्र० बोहि]।

महासुख [कु० ३] = सामरस्यानन्द [११५]।

महासुह [लु० १, दा० १, भु० ४, का० ६, का० ७, कम्ब १] = महासुख =
सामरस्यानन्द [११५]।

महासुहे [श० १, श० २, भु० ८] = महासुखेँ[1] [द्र० महासुह]।

महासुहेँ [श० २] = महासुखमे [द्र० महासुह]।

मुकल [स० २] = मुक्त [१३२]।

मुका [भु० ७] = मुक्त [द्र० मुकल]।

वाक्पथातीत [का० ११, ता० १] = वाक्पथसँ अतीत परमतत्त्व [६३]।

वारुणी [वि० १] = मद्य = "वारुणीति सुखप्रमोदत्वात्" [सं० टी०] सँ परम-
शिवजे लीन भेला पर सामरस्यानन्द वा सहस्रारस्थ मधु [१०६]।

विरमानन्द [भु० ४] = विलक्षण चतुर्थानन्द [सं० टी०] = तुरीयानन्द [३१०]
= सामरस्य–समाधिक आनन्द [३१०]।

विहाण [भु० ३] = विहान = ज्ञान [–सूर्य]क उदय [१७२]।

शून [भा० १] = शून्य [७५]।

शून्यताराजो [कु० ३] = महासुख [द्र० गीतक ओही पंक्तिमे 'महासुखनामा']
= सामरस्यानन्द [११५]।

सअलानुत्तर माणी [दा० १] = सकलानुत्तर मानि = समस्त विश्वकेँ
अनुत्तर परमतत्त्व [क प्रतिविम्ब] मानि [द्र० अनुत्तर]।

१। चर्यागीतमे एँ तथा ए क प्रयोग वर्तमान विभक्तिसँ किछु दोसर रङ्ग भेल अछि। तृतीयामे ए तथा सप्तमीमे एँ क प्रयोग भेटैत अछि [द्र० सिद्धसरहपादकृत दोहाकोश—भूमिका पृ० ५१-५२]। किन्तु हमरा कतहु कतहु उक्त सत्यक अतिरिक्त एँ क प्रयोग तृतीयामे तथा ए क प्रयोग सप्तमी विभक्तिमे सेहो भेटल, प्रस्तुत अनुक्रमणिकामे सर्वत्र सं० छाया तथा सं० टीकासँ ई धारणा पुष्ट भेल अछि। कतहु एव अर्थमे ए लागल सेहो भेटैछ।

सअसँवेअण [शा० २] = स्वसंवेदन = आत्मप्रत्यभिज्ञा [२३३] ।

सअसम्वेअण [शा० १] = स्वसंवेदन = [द्र० सअसँवेअण] ।

समरस [वी० १] = समस्त अनेकतामे एकताक अनुभूति [६६]
= सामरस्यमय [३५५–३५६] ।

समरसे [भु० ७] = समरसस्थितिमे [६६] ।

सहज [का० ११] = सहजें [स्वभावतः, स्वतः] प्राप्त सामरस्यक आनन्द [१४१]।

सहज निदालु [का० १०] = सहजनिद्रालु = सामरस्यसमाधि (तुरीय)मे
डुबल [१४१] ।

सहजमहातरु [भु० ७] सामरस्यमय शिवशक्ति (= परमशिव) रूप
महान् वृक्ष [१४१] ।

सहज सरुआ [भु० ५] = सहज स्वरूपा = सामरस्यमय शिव–शक्तिक
स्वरूप [१४१] ।

सहजानन्द [भु० ४] = सामरस्यानन्द [१४१] ।

सहजे [स० ३, का० १२, वि १ = सहजें = सहजक संग = शिवशक्तिक संग,
सामरस्यें [१४१] ।

सुण विआर [आ० १] = शून्य–विचार = शून्यक विचार = परमतत्त्वक
विचार [७४] ।

सुन करुण [दा० १] = शून्य–करुणा = शक्ति–शिव [८३] ।

सुने सुन [क० १] = शून्ये शून्य = ब्रह्माण्डशून्यमे पिण्डशून्य वा परमशिवमे
शून्यताशक्ति [७४–८३] ।

सुहे [का० १०] = सुखें = सामरस्यक महासुखें [११६] ।

सूना पान्तर [शा० १] = शून्य प्रान्तर वा शून्य पाँतर = परमतत्त्वक
साम्राज्य [७४] ।

सोण रुअ [भु० ८] = सोन–रूप वा शून्यरूप (आकार) [७४] ।

शक्ति

अठकुमारी [का० ६] = अष्टकुमारी = अष्टप्रकृति [वं० टी०] [६८] अथवा अष्टशक्ति [कुमारी = शक्ति, द्र० शिवसूत्र प्र० १ सू० १३]।

उदकचान्द [लु० २] = जलचन्द्र = जलमध्य चन्द्र-प्रतिविम्ब। द्र० प्रतिविम्बवाद [२२१]।

कमलिनि [भु० ४] = कमलिनी = कुण्डलिनी [३४४] रूपी पद्मिनी महापद्मवन दिशि जाइत।

खसम सभावे [भु० ७] = गगनसमान स्वभावेँ = शून्यस्वभावेँ = विमर्शस्वभावेँ [७७]।

गअण डो० १, का० १३, कम्ब० १] = गगन = शून्यशक्ति = विमर्शशक्ति [७७]।

गअणा [स० ४] = गगना = शून्यस्वरूपिणी [गगनहृदया] [८०]।

गअणे स० ३] = गगने = शून्यतास्वभावँमे = महतीविमर्शशक्तिस्वभावमे [७७]

गगन [त० १]—द्र० गअण।

छाआ [ज० १] = छाया। द्र० प्रतिविम्बवाद [२२१]।

जलविम्बाकारे [स० ४] = जलमध्य प्रतिविम्बक आकारेँ। द्र० छाआ।

जोइणि [का० ८] = योगिनि = योगिनी = महामुद्रा [२१७]।

जोइणी [भु० ४] = योगिनी। द्र० जोइणि।

जोइनि [गु० १] = योगिनि। द्र० जोइणि।

डोम्बि [का० ३, का० ७] = डोमिनि = डोमिनि वा महाशक्ते [३३२]।

डोम्बी [डो० १, का० ८, धा० १] = डोमिनि। द्र० डोम्बि।

तथता [का० २, का० १०, क० १, ज० १] = तथारूपता = विमर्शस्वभाव [३०३]।

दापण पतिविम्बु [भु० ६] = दर्पण-प्रतिविम्ब। द्र० छाआ।

नैरामणि [श० २, दा० १] = गृहिणी रूपमे भाविता नैरात्मा [ता० बौ० सा० सा० पृ० ३२७] = गृहिणीरूपमे भाविता शून्यस्वरूपिणी, निराकारशक्ति [२०८, २२४] तथा [७९]।

पारिम कुलेँ [दा० १]=परम कुले = परमा शक्तिमे [१५७]।

पोइआ [डो०१] = नीच जातिक कन्या (च०गी०को०पृ० ४६), निम्नस्थिता स्त्री।
= डोमिनि तथा निम्नतसचक्रस्था कुण्डलिनीशक्ति [३३२]।

बहुड़ी [कु०१] = वधूटी = नवयौवना (सं०श०को०) = युवती शक्ति[मुद्रा][१६५]
अथवा कामोत्तप्ता कुण्डलिनीशक्ति [३३१]।

बिआती [कु० १] = बिआइत = जगत्प्रसूती महामुद्रा [१६६]।

महामुदेरी [ता० १] = महामुद्रा [२०८]।

मातङ्गी [डो० १] = मातङ्गी महाविद्या वा चाण्डालिनी (सं० श० को०)
= कुण्डलिनी शक्ति वा चण्डाली = कुण्डलिनीशक्ति [३४२]।

माआहरिणी [भु० ३] = महामायास्वरूपिणी हरिणी = अन्तःशक्ति [३३१]-
रूपिणी हरिणी।

शुण्डिनि [वि० १] = शौण्डी वा शौण्डिनी [मदमत्ता वा कलबारनी—
द्र० सं० श० को०] = रतिप्रिया शक्ति [२२५] अथवा
रतिप्रिया कुण्डलिनीशक्ति [३३१]।

शूण संपुन्ना [का० १२] = शून्य-सम्पूर्णा = शून्यस्वरूपिणी विमर्शसँ,
अहन्तपरामर्शसँ सम्पूर्ण [७७]।

सुइण [स० ४] = शून्य = शून्यस्वरूपिणी [८०]।

सुण तरुवर [का० १३] = शून्य-तरुवर = मायारूपमे शून्यवृक्ष [७४ ख]।

सुणमेहेली [श० २] = शून्य-महिला (सं० छाँ०) = स्त्रीरूपमे भाविता
शून्याकारा शक्ति वा महामुद्रा [८०, २०८]।

सुण बिआर [आ० १] = शून्य-विचार = शून्यशक्तिक [८०] विचरण।

सुणे अहारिउ [शा० २] = शून्ये (शून्यकेँ) आहारल = शून्यकेँ आहृत कएल
= शून्यशक्तिकेँ आत्मसात् कएल, अन्तःसाधना
द्वारा आत्मलीन कएल [३३६]।

सुन नैरामणि [श० १] = शून्यनैरात्मा। द्र० नैरामणि।

सुनुपाख [लु० १] = शून्य-पक्ष = शून्य-शक्तिक [८०] पक्ष।

सोने [कम्ब० १] = स्वर्णें वा शून्येँ = स्वर्णें वा [तत्समान चकचक करैत]
शून्यता (विमर्श) शक्तिएँ [८०]।

हूँ भव इ गअणा [स० ४] = हूँ-भव ई गगना = हूँकारबीजोद्भवा गगनहृदया
महाविद्या (तारा), महती शक्ति [१५७]।

शिव

करुणाडमरुलि [आ० १] = करुणा-डमरू = करुणामय शिव [८३]क डमरू।

करुणा नावी [कम्ब० १] = करुणा-नाव = करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका [८३, ८६, ८९, १६६]।

करुणामेह [भु० ५] = करुणा-मेघ = शिवक करुणामय स्वरूप [८३]-मेघ।

खमण भतारे [कु० २] = ख-मन भतारे = गगन-मन स्वामी = शून्य-चित्त-स्वामी = चिद्रूपमे चित्त-स्वामी (चिच्छक्तिक) [८९]।

हेरुअ [वी० १, शा० २] = हेरुक = प्रज्ञाक स्वामी [I. B. I.—P. 157] = शक्तिक स्वामी [८१] = शिव [८१]।

साधना-मार्ग

सामान्य प्रमाण

अटमहासिद्धि [शा० १] = अष्टमहासिद्धि [१५७]।

इष्टामाला [का० ११] = इष्टक माला [१५७]।

उजुबाट [स० २] = सोझ बाट [१४८, १५७]।

एवंकार [का० २] = एवं मन्त्र [१५४, १५७]।

कपाली [का० ३, का० ४] = कापालिक [१४९, १५७, १५८]।

कबाली [का० ४] = कपाली। द्र० कपाली।

कापालि [का० ३] = कापालिक। द्र० कपाली।

कुल लइ [स० ३] = कुलाश्रित भए = शक्तिक आश्रित भए वा कौल मार्गें [१५७]।

कुलेँ कुल [डो० १] = इतस्ततः तटपर [च०गी०को० पृ० ४९ पा० टि० कूल मानि] अथवा एक देहसँ दोसर देहमे [प्रस्तुत गीतक मैथिली टीका द्रष्टव्य]।

कुलेँ कुल [शा० १] = एहि कुलसँ ओहि कुलमे = कौलक एक आम्नायसँ दोसरमे। कौलक हेतु द्रष्टव्य [१५७]।

चर्य्या [कु० १] = आचार [६]।

जोइ [का०३, का० १२] = योगी [१५८]।

जोइआ [भु० ६] = योगिआ। द्र० जोइ।

दाहिण बाम [चा० १] = दक्षिण-वाम मार्ग [१४८]।

धामार्थे [चा० १] = धर्म-अर्थ पुरुषार्थ मध्य [३४६]।

बाम-दाहिण [स० २, डो० १, कम्ब० १, शा० १] = वाम-दक्षिण। द्र० दाहिण-बाम।

वीरा [गु० १, कु० २] = वीरभावाश्रित [१५७]।

हाड़ेर माली [का० ३] = हाड़क माला = अस्थिमाला [१५३, १५७]।

हूँ [स० ४] = हूँ-बीज (कूर्च-बीज) [१५७, ३७१]।

काय-वाक्-चित्त [त्रिधातु]

काअ वाक् चिअ [का० ११] = काय-वाक्-चित्त [१६६]।

काअवाक्चिए [दा० १] = कायवाक्चित्ते। द्र० काअवाक्चिअ।

तिअ धाउ [श० १] = त्रिधातु = कायवाक्चित्त [सं० टी०] [१६६]।

तिअ धाए [लु० २] = त्रिधातुए = त्रिधातुमे [सं० छा०] = कायवाक्चित्तमे [१६६]।

तिनिएँ पाटेँ [म०१] = तीनि पाटमे = तीनि पीठमे [बं० टी०] = कायवाक्चित्त-पीठमे [सं० टी०] [१६६]।

त्रिधातुघु [का० ६] = तीनि धातुमे = कायवाक्चित्तमे। द्र० तिअ धाए।

मैथुन [महामुद्रा-साधन]

कमल कुलिश [गु० १, धा० १] = पद्म-वज्र = भगलिङ्ग [३४, १८५, २२६]।

कुन्दुरे [गु० १] = द्वीन्द्रिय संयोगमे [२२७] = मैथुनमे [२२७]।

कुलिशाब्ज [कु० ३] = वज्र-पद्म = लिङ्ग-भग। द्र० कमलकुलिश।

छिणाली [का० ७] = छिनारी = छिनारि = सभक आत्मा (-रूप शिव)क संग रमण केनिहारि [२२३]।

जाणजौवण [कु० २] = जान-यौवन = ज्ञान-यौवन वा तरुणयौवन [च० गी० को० पृ० ६६ पा० टि०] [२४]।

तियड्डा [गु० १] = त्रिअड्डा = नाड़ीत्रय [१४६]क अड्डा अथवा योन्यम [२२३]।

दशमि दुआरत [वि० १] = दशम दुआरिसँ = वैरोचन-द्वारसँ वा दशम इन्द्रिय उपस्थसँ [२२७]।

पँउआ खालेँ [भु० ८] = पदुमा-खालेँ = पदुमा-छारनिमे [तु० खालनं-सं० श० को०] = पद्मधारमे = भगधारमे [३४]
= प्रज्ञामे [१८५]
= शक्तिमे [१८६]।

बिआण [कु० २] = बिआन = जगतकेँ प्रसूत करब। द्र० बिआती (शक्ति)।

वज्रधारी [श० १] = पुँचिह्नधारी [४३४] = उपाय [१८५] = शिव [१८६]।

वज्रपद [त० १] = लिङ्गपद [३४] = उपायपद [१८५] = शिवपद [१८६]।

वाजणाव [भु० ८] = वज्रनाव = लिङ्ग-नाव [३४] = उपायनाव [१८५]
= शिवनाव [१८६]।

चित्त

करहा [वी० १] = करभा = युवक हाथी [सं० श० को०]
= चित्तगज [८७, १६५, १६६]।

करिणा [का० २] = करिन् (अनादरमे) = गज = चित्तगज। द्र० करहा।

कालमुसा [भु० २] = कालमूसा = दुष्ट चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।

गअवर [वी० १] = गजवर = चित्तगजवर। द्र० करहा।

गअवरेँ [का० ५] = गजवरेँ। द्र० गअवर।

चिअ [भु० ८] = चित्त [८७, १६६]।

चिअकण्णहार [का० ६] = चित्त-कण्ठहार [१६६]।

चिअराअ [स० २, भा० १] = चित्तराज [१६६]।

चिअ विकरणे [आ०१] = चित्त विकरणे = चित्त विकारे = विकल्पजाल [१६६]।

चिअ विहुन्ने [भा० १] = चित्तविहीने = चित्तविहीन भेलासँ [१६६]।

चित्त [दा० १]——द्र० चिअ।

चित्तराज [का० ६]——द्र० चिअराअ।

चीअगएन्दा [म० १] = चित्त-गजेन्द्रा। द्र० गअवर।

चीअ थिर करि [स० ३] = चित्त स्थिर कए [१६६]।
चञ्चल चीए [लु० १] = चञ्चल चित्तो [१६६]।
चञ्चल मुसा [भु० २] = चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।
णिअ मण [श० १] = निज मन = निज चित्त [१६६]।
णिअ मन [भु० ५] = निज मन [द्र० णिअ मण]।
बलन्दें [स० ४] = बलदें वा बड़दें = इन्द्रियकें बल देनिहार बड़द समान विकल्प-युक्त विमूढ़ चित्तें [१६६]।
मण [आ० १, का० १३] = मन = विकल्पयुक्त चित्त [१६६]।
मणरअणा [भु० ७] = मनरतना = मनोरत्ना = मनोरत्न = विकसित चित्त [१६६]
मुसअ [भु० २] = मूषक = मूस = चञ्चल चित्त-मूस [१६५]।
हरिणा [भु० १] = चित्त-हरिण [१६६]।

विकल्प

अवणागमण [का० १०] = आवागमन = जन्ममरण [१७०,१७१]।
अवणागमणा [ज० १] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमण।
अवणागवणा [भु० २] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमणा।
अवरना [का० ३] = आवरणा = मायाक आवरण [१६६]।
अविदार [स० ४] = अविद्यार = अविद्याक [१७६]।
अविद्या [का० २] = अविद्या [१७६]।
आलाजाला [का० ११] = इन्द्रजाल [च० गी० को० पृ० १३१ पा० टि०] = इन्द्रजाल जकाँ मिथ्या मायाजाल [१७७]।
इन्दिअ [आ० १] = इन्द्रिय [१७२]।
इन्दिआल [भु० ५] = इन्द्रिय-जाल [१७२] वा इन्द्रजाल [१७७]।
इन्दिविसिआ [भु० ८] = इन्द्रियविषया = इन्द्रिय-विषय [१७२]।
इन्दी [दा० १] = इन्द्रिय [१७२]।
करण कपटेर [लु० १] = इन्द्रियकपटक [१७२]।
करिणिरें [का० २] = हथिनीकें = इन्द्रियरूप हथिनीकें [१७२]।

गोहाली [स० ४]=गो-हाली=इन्द्रियशाला (शरीर) [१७२]।

चांगेड़ा [का० ३]=चङ्गेरा=मायाक आवरण-प्रपञ्चजाल (अपन हाथसँ बीनब) [१६६]।

जाममरण [भु० ७]=जन्ममरण [१७०, १७१]।

नणन्द [का० ४]=ननन्द=ननदि [ननान्दरं—सं० छा०] वा चक्षुरिन्द्रियादि (सं० टी०)=ननदि वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय [१७२]।

पञ्चजणा [भु०३]=पञ्चजना=पञ्चविषय (सं०टी०)=इन्द्रिय-विषय [१७२]।

पञ्चपाटण [भु० ८]=पञ्चपत्तन=(रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञान) पञ्चस्कन्धपर आश्रित अहङ्कारममकारादि (सं० टी०) [१७३]।

पञ्चँ विसअ [म० १]=पाँच विषय=पञ्च ज्ञानेन्द्रियक विषय [१७२]।

बान्धण [का० २]=बन्धन [१७३]।

भय घिण [आ० १]=भय-घृण=भय-घृणा=अष्टपाशमे भय-घृणापाश [१७४]।

भव [का० १२]=जगत् [१६२]।

भवनिर्वाणा [स० १]=भव-बन्धन-मोक्ष [१७३]।

भवनिव्वांणे [का० ८]——द्र० भवनिर्वाणा।

भवमोह [स० ४]=भव-मोह=संसारक मोह [१७२, १७३]।

भावाभाव [लु० २, भु० ५, भु० ७, का० २]=भाव-अभाव विकल्प [१६६]।

भांतिएँ [भु० ६]=भ्रान्तिएँ [१६१]।

माआ [ज० १]=माया [१७२]।

माआजाल [का० ६]=मायाजाल [१७२]।

माआ मोहा [श० २]=मायामोहा=माया-मोह [१७२-१७३]।

मायामोह [शा० १]—द्र० माआ मोहा।

मोह [कु० ३, का० १०, चा० १, ज० १]=मोह [१७३]।

मोहेँ [भा० १]=मोहसँ। द्र० मोह।

रस रसानेरे [स० १]=रस-रसाथनक [१७५]।

राग द्वेष [का० ४]=राग-द्वेष [१७२]।

राजसाप [भु० ६]=रज्जु-सर्प=रज्जुमे सर्पक भ्रान्ति [१६१]।

वाणत [भु० ७]=वाणतः=जालसँ (सं० श० को०)=मायाजालसँ [१७२]।

वासना [भु० ६]=वासना [१७८]।

विषयेन्द्रिय [का० ६]=विषयग्राहक इन्द्रिय [१७२]।

विसअमण्डल [म० १]=विषयमण्डल [१७०, १७८]।

सुख दुखेतेँ [लु० १] =सुख-दुःखसँ [१७२]।

सुभासुभ [का० १३]=शुभाशुभ [१७२]।

हरि हरं बाह्म भड़ा [धा० १]=हरिहरब्रह्मा भट्ट [१७२, १७३]।

योगसाधन [अन्तःशक्तिसाधन]

अणहकसन [म० १]=अनहत-कर्षण=अनाहत-कर्षण=अनाहत-घन-गर्जन [३०४, ३०६]।

अणहा [वी० १]=अनहा=अनहद=अनाहत नाद [३०६]।

अधराति [भु० ४]=अर्धरात्रि=सहस्रारसँ हृत्पद्मक मध्य धरिक प्राणक स्थिति [२६४]।

अनहा डमरु [का० ४]=अनाहत-डमरू। द्र० अणहकसन।

अन्तराले [ज० १]=अन्तरालमे=मध्यमे [३५०, ३५१, ३५४]।

अनाहत [त० १]——द्र० अणहा।

अमिअ पाण [भु० २]=अमृत पान=सामरस्ययोगामृत [३३६]।

अवधूइ [भु० ४], अवधूती [वी० १]=अवधूती नाड़ी [२४६]=सुषुम्ना नाड़ी [२५२]।

आलि कालि [का० १, का० ४, वी० १]=इड़ा-पिङ्गला नाड़ी [२५०]।

ओडिआणे [गु० १]=उड्डीयाने=उड्डीयान पीठमे [३५६]।

कमल [भु० ४]=शिरःस्थ महासुखपद्म (चक्र) [२७२]=शिरःस्थ सहस्रार-पद्म [२८६]।

कमलरस [गु० १]=सहस्रारक अमृत [३३६]।

काअणावड़ि [स० ३]=कायनावक=त्रिधातुमे काय-नावक [१६६]।

काआ तरुवर [लु० १]=काया तरुवर=काय-वृक्ष श्रेष्ठ [१६६]।

कुम्भीरे [कु० १]=कुम्भके=कुम्भकप्राणायामे [३४६]।

गअणटाकलि [म० १]=गगन-टाकलि (शब्द वा ध्वनिविशेष—द्र० च० गी० को० पृ० ५६ पा० टि)० = आकाशक अनाहत नाद (द्र० ऐजन) = शून्यता-शब्द (सं० टी०)।

गअणे उठि [भु० २]=गगने उठि=महासुखकमलवन (चक्र)मे जाए (सं०टी०) = सहस्रार-कमलवन जाए [२८६]।

गअणत [श० १]=गगनमे=सहस्रारस्थ शून्यमे (द्र० गअणे उठि, गअण टाकलि)।

गिरिवरसिहर [श० १]=गिरिवरशिखर=मेरुशिखर=मेरुदण्ड-रूप मेरुपर्वतक शिखर [२५१,२५२,२५४]

गुली [श० १]=गुहामे लीन=मेरुदण्ड-कन्दरामे लीन [२५४]।

गङ्गा जउना [डो० १]=गङ्गा-यमुना=इड़ा-पिङ्गला [२५०]।

घड़ली [वि० १]=घटी (सं० टी०)=संवृति-परमार्थ सत्यद्वयकेँ घटित केनिहारि अवधूतिका नाड़ी (सं० टी०)=सुषुम्ना नाड़ी [२५२]।

चउकोड़ि [भु० ८]=चतुष्कोटि [२७५]।

चउसटि [वि० १]=चौँसठि (निर्माणचक्र वा आधारपद्मक बौद्धकथित-दल-संख्या) [२६४, ३४१]।

चण्डाली [भु० ८, का० ७, धा० १]=चण्डा+आली=कुण्डलिनी [३२७-३४२]।

चन्द सूज्ज [डो० १]=चन्द्रसूर्य=ललना-रसना=इड़ा-पिङ्गला [२५०,२५२]।

चान्दसुज [गु० १]——द्र० चन्द सूज्ज।

चौषट्ठि [का० ५]——द्र० चउसठि।

तथतानादेँ [क० १]=तथता-नादेँ=तथारूपता-नादेँ [३०३]।

तूर्य [कु० ३]=तुरीय [३१०]।

दाहिण बाम [चा० १]=रसना-ललना=पिङ्गला-इड़ा [२५०]।

दुलि [कु० १]=द्वयाकार जतए लीन होथि, ताहि महासुखकमलकेँ (सं० टी०) =सहस्रारक अमृतकेँ [३३६]।

देहनअरी विहरइ [का० ४]=देहनगरी विहरैत छथि=अण्डमय निज पिण्ड-पीठमे [२३२] वा देह-देवालयमे [२४०] विहरैत छथि।

धमण चमण [लु० १]=इड़ा-पिङ्गला [२५०]।

न रवि शशि [स० २]=ने पिङ्गला, ने इड़ा [२५०]।

नलिणीवन [भु० ३]=नलिनीवन=महापद्मवन=सहस्रार-पद्मवन [३४३]।

नाड़ि [कु० २]=नाड़ी [२४८-२५३]।

नाड़िशक्ति [का० ४]=नाड़ी-शक्ति=ब्रह्मनाड़ीक अन्तःस्थिता शक्ति
=कुण्डलिनी शक्ति वा प्राणशक्ति [२८९]।

नाद [कु० ३, त० १]=नाद [३००]।

नाद न बिन्दु न [स० २]=नाद-बिन्दु किछु नहिं [३०२]।

पद्मवण [भु० ३]=पद्मवन=महापद्मवन=सहस्रारपद्मवन [३४३]।

पिटा [कु० १, ढे० १]=पीठा=पीठ [३५७-३५९]।

बतिश तान्तिधनि [वी० १]=बत्तीस नाड़ी [२४८] रूप तन्त्रीक ध्वनि।

बतिस जोइणी [भु० ४]=बत्तीस नाड़ी [२४८]।

बाम दाहिण [स० २, डो० १, कम्ब०,१, शा० १]=ललना-रसना
=इड़ा-पिङ्गला [२५०]।

बाह्मनाड़िआ [का० ३]=ब्रह्मनाड़िका=ब्रह्मनाड़ी [२५३]।

बिन्दुणाद [क० १]=बिन्दु-नाद [३००]।

मझ [का० ६]=मध्य [३५१]।

मणपवण [का० ८]=मन-पवन=मन-प्राण [३२३]।

मणि [त० १]=मणिपूर [३५६]।

मणिकुले [गु० १]=मणिकुलेँ=मणिमूलेँ [सं० टी०]=मणिपूरसँ [३५६]।

माझ [क० १]=मध्य [३५०, ३५१, ३५४]।

माझेँ [धा० १]=मध्यमे। द्र० माझ।

मुसा पवणा [भु० २]=मूस-पवना=प्राण [२९१] रूपी मूस [लययोगसँ पूर्व]।

मेरुशिखर [धा० १]=मेरुशिखर। द्र० गिरिवरसिहर।

रवि शशी [का० ४]=रवि-शशि=पिङ्गला-इड़ा [२५०-२५२]।

वण [शा० १, भु० १]=वन=कायपर्वतवनँ [सं० टी०]=महापद्मवन।
द्र० पद्मवन।

विरमानन्द [भु० ४]=विलक्षण शुद्ध आनन्द [द्र० ओएह गीत] [२७५]।

शासु [का० ४]=श्वास [३४६]।

शिखरे [कु० ३]——द्र० गिरिवर सिहर।

ससहर [भु० ४, का० ७, धा० १]=शशधर=बोधिचित्त-चन्द्र [तीनू गीतक सं० टी०] अथवा चन्द्रमण्डल=चित्तचन्द्र [३२३], प्राणचन्द्र [३२४] वा इड़ा [चन्द्र] नाड़ीमण्डल [२५०]

सान्धि [डो० १, वी० १]=सन्धि=वाम-दक्षिण नाड़ीक सन्धि वा मध्य [२५०, ३५४]।

सासु [गु० १]=श्वास [३४६]।

सुखपुर [कु० ३]=महासुखचक्र [सं० टी०]=सहस्रारचक्र [२८६]।

सुज, ससि [वी० १]=सूर्य-चन्द्र=पिङ्गला-इड़ा नाड़ी [२५०]।

सुसुरा [कु० १]=श्वास [३४६]।

०



२

बौद्ध चर्यापदक अंग्रेजी अनुवाद (१-४८) [भुसुकपाद चर्यापद संख्या ४९ आ शबरपाद चर्यापद संख्या ५० केर अनुवाद नै देल गेल अछि।] (पृ. ९७-११५)

The Charyapada

Mystic Poems of Eighth Century India

Charyapada 1

Luipada

The body is like the finest tree, with five branches.
Darkness enters the restless mind.
Strengthen the quantity of Great Bliss, says Luyi.
Learn from asking the Guru.
Why does one meditate?
Surely one dies of happiness or unhappiness.
Set aside binding and fastening in false hope.
Embrace the wings of the Void.
Luyi says: I have seen this in meditation.
Inhalation and exhalation are seated on two stools.

Charyapada 2

Kukkuripa

Milk from the tortoise cannot be contained in a pail.
While the alligator eats tamarind off the tree.
Listen musician, the courtyard is inside the room.
At midnight the *kanet* is stolen by thief.
The father-in-law falls asleep, the daughter-in-law is awake.
Where can we find the *kanet* stolen by the thief ?
During the day she is afraid of the crow,
At night she goes to amorous Kamrupa.
Kukkuripa sang such a charya.
Only one in a million can understand it.

Charyapada 3

Virupapada

There is a woman winemaker who enters two rooms
She ferments wine with fine barks.
Hold me still, Shahaja, then ferment the wine

So that your shoulders are held strongly and your body free is from age and death.
When the sign is seen on the tenth door
The customer who walks in cannot get out.
A small pot, small is its nozzle.
Pour very carefully, hold steady, says Virupa.

Charyapada 4

Gundaripada

Press the three circles and, oh Yogini, embrace me,
Mashing the lotus.
Vajra, prepare a meal for the evening.
Yogini, I cannot live for a moment without you.
I shall kiss your mouth and drink the nectar of the lotus.
Friction cannot besmear you, Yogini.
She enters orient by climbing *manikula*.
Put a lock and key on the mother-in-law's room
And cut the wings of the sun and moon.
Gundaripada says: I am the hero of all sensuousness.
Between man and woman I raise my *linga.*

Charyapada 5

Chatillapada

The river of life, dark and deep, moves swiftly.
The two sides are muddy, the middle is depthless.
Chatilla makes a bridge for the sake of Dharma.
Those who wish can cross in confidence.
With the axe sharpened with Nirvana
Split open the tree of delusion and join the planks together.
When you climb the bridge, do not go fight or left.
Bodhi is near you, do not go any further.
Those of you who want to cross to the other side
Ask Chatillapa, the greatest Guru.

Charyapada 6

Bhusukupada

Who have I accepted and who gave I given up?
All sides are surrounded by the cries of the hunter.

The deer's own flesh is his enemy.
Bhusuku the hunter does not spare him for a moment.
The deer touches no green, nor drinks water.
He does not know where the doe lives.
The doe tills the deer: leave this forest, and free yourself.
Thus the deer sped for hid life, leaving no hoof marks behind.
Bhusuku says 'this does not reach the heart of the unwise'.

Charyapada 7

Kanhupada

Truth and untruth close the road which saddens Kanhupa.
Where will he live?
He who is supposed to be wise is also unwise.
They are three, they are three, three, they are all separate,
Kanhu says: the world is cleansed.
Those who came all went away.
Comings and goings make Kanhu sad.
O Kanhai, the City of Great Bliss is very near, says, Kanhu.
Yet I cannot get into my heart.

Charyapada 8

Kambalambarapada

Loading the boat of *Karuna* with gold
Leaves no room for silver.
Hey Kamli, glide towards the sky.
How does the cycle of rebirth return?
Take the wooden pole out and loosen the rope.
Ask a good Guru and sail ahoy.
When you climb into the boat, look around.
There are no oars, without them who can move?
Pressing right and left, he found his way
to great happiness.

Charyapada 9

Kanhupada

Destroy the stronghold of evamkara.
Free yourself from all bondage.

Kanhu was floating under ashab.
He became calm when he entered the lotus of Shahajananda.
When the elephant's passion is aroused by his she-elephant
He becomes wet.
Six kinds of living beings are by birth pure.
Neither existence nor nonexistence are impure
Even by a strand of hair.
Take ten forced jewels from the ten directions,
Reign over the elephant of learning easily.

Charyapada 10

Kanhupada

Outside the lies your hut, Dombi woman.
Shaven headed Brahmins, come and touch you.
Dombi woman, I shall make love to you
Kanhu is naked Kapali yogi who has no hatred.
There is a Lotus with sixty-four petals.
On it dances the *Dombi nari*.
O Dombi, let me ask you a question.
On whose boat do you come and go?
You sell the loom to others
While you spread the flat bamboo mat for me.
For you I have discarded the basket of reeds.
You see Dom-nari.
I the Kapalik wear a necklace of bones for your sake.
O Dombi, you have churned the sea and eaten the roots of the Lotus.
I shall kill you and take your life.

Charyapada 11

Kanhupada

The strength of the artery is firmly held in bed.
Spontaneous drums rise in heroic volume.
Kanhu, the kapali, is engaged in *yonic* joining
through the city of the body.
Knowledge and wisdom are tied to his feet
Like ankle bells of the hour.
Day and night are turned into ornaments of pleasure.
Wearing ashes from burnt-out anger-hatred-and illusion
be adorns a necklace with salvation pearls.
By killing his mother-in-law, sister-in-law and his mother,

Kanhu thus became a kapali.

Charyapada 13

Kanhupada

On the board of Karuna I play the nine strongholds.
With the mercy of Guru I win over the universal hold.
My king conquers duality.
With the blessing of the benefactor Supreme Bliss is near.
First I take the pawns with the bishop.
I defeat five.
I checkmate the living with my queen.
So is my victory over worldly existence.
Kanhu says: I check well
and take a count of sixty-four squares.

Charyapada 13

Kanhupada

Taking three refugees in a boat I captured eight.
In my body resides karuna and the chamber is empty.
I crossed the river of existence like a dream.
In mid-river I came to know the waves.
I used five '*tathagatas*' as oars.
Kanhai rows the boat like a dream.
Smelling, touching and tasting as they are
like a dream without sleep.
The mind is the boatman in a Great Void.
Kanhu goes for Union with Great Happiness.

Charyapada 14

Dombipada

The boat glides between the Ganges and Yamuna.
On it the Chandali woman takes drowning men across.
Row on Dombi, row on.
On your way, it is afternoon.
With the blessing of Guru
I shall return to the blissful 'ginapur,.
The five oars ply and the towing rope is bound at its end.

Bail water out with the pail of sky
So that water shall not enter the holes.
The sun and moon are the two wheels.
While Creation and Destruction are the masts.
Right and left and they cannot be seen.
Steer on.
She does not accept *cowrie* and *budi* as payment.
She ferries men across for free.
He who mounts the chariot,
not knowing how to steer,
only wanders from shore to shore.

Charyapada 15

Shantipada

Only the self can make itself conscious.
It cannot be perceived by any measure.
Whoever crosses the Shahaja path
Does not return.
Fool, do not wander aimlessly.
Samsar is a straight road.
Do not take the bends.
The high road is covered with a tent.
You do not understand the depth of the sea of illusion.
Neither a boat nor a raft can be seen ahead
Yet you do not ask Guru.
The way to the void cannot be seen.
Do not get lost by mistake.
If you take the straight road.
You will achieve the eighth *siddhi*.
Shanti leaves aside right and left and spends time playfully.
Where there are no tolls nor security checks nor any bush.
Listening to Guru's advice,
He can arrive at Shahaja with his eyes closed.

Charyapada 16

Mahidharapada

The '*anahata*' sound came pounding in three planks like black clouds thundering.
It made the unafraid '*mara*' flee with the *mandala.*
Like a wild elephant the mind runs towards the fathomless space. It thirsts.
Breaking the chains of virtue and vice, uprooting the pillar.

Only I could hear the sounds of nothingness in the sky.
My mind seeks Nirvana.
Intoxicated with the wine of Supreme Bliss
The drunkard ignores the three skies.
No enemy can be found for one who has mastered the five subjects.
The heat of the scorching sun
Drives me to the Ganges of the sky.
Mahidhara says: I have not seen anything in my dive.

Charyapada 17

Vinapada

The sun was the gourd, the moon was used as used as its strings.
The unstruck sound was the neck
And the ascetic woman became the disc.
O maid, it is the sound of Herua's Vina,
the sound of the Void as it vibrates into Karuna.
The duality of the real and the unreal are my bow,
While I console myself with wine of the elephant.
When the camel got caught in the camel trap,
the sound from thirty-two strings vibrated at the same time.
Dance vajrachary, sing goddess.
Buddham dharma is incomprehensible.

Charyapada 18

Kanhupada

I plied three worlds with great ease
and slept in the sport of great happiness.
O Dombi, tell me, how is your lover,
he who is at the high castle outside,
but inside, a kapali.
Dom woman, you have turned everything into the untouchable
Without any reason you have pushed aside the moon.
Some say you are very bad.
Wise men do not leave your neck.
Kanhu sings: you are chandali, passion-woman.
Dombi, there is no one as unchaste as you.

Charyapada 19

Kanhupada

Samsara and Nirvana are the tabor and the drum.
The mind and vital breath are the flute and the cymbal.
Victory cries spill over the sky.
Kanhupa goes to wed Dombi.
By marriage to Dombi he consumed the birth.
For a dowry he received blissful religion.
Day and night pass in love making.
Night ends in the net of the yogini.
The yogi is intense with Dombi.
He does not leave her for a second.
He is intoxicated with the love of Sahaja.

Charyapada 20

Kukkuripada

I have no hope, my husband is a monk.
My sensuous pleasures cannot be expressed in words.
When I looked at the confinement chamber
I committed an abortion.
What I want cannot be got there.
My first born a son was desired.
Only by feeling his pulses did I know how pitiful he was.
When I blossomed into full youth
I got rid of my mother and killed my father.
Kukkuripa says this world is static.
He who knows that is the winner.

Charyapada 21

Bhusukupada

The mouse feeds in the dark night.
He cuts ambrosia for food.
O Yogi! Kill the mouse-wind
To stop him from coming and going.
The mouse digs in the earth.
The restless mouse will cast an evil spirit, get rid of him.
Black is the color of the mouse.
I know not his caste.
He climbs to the sky and eats aman-paddy.
As long as the mouse keeps moving

still him with advice from Guru.
When the mouse stops eating,
Bhusuku says: all his ties will be cut off too.

Charyapada 22

Sarahapada

By making his own samsara and Nirvana
Man ties himself to it.
I do not know, unknown yogi,
How birth, death and life happen.
Death is like birth.
There is no difference between living and dying.
One who is afraid of birth and death
Should desire medicine or chemistry.
Those who travel in the three worlds
because of the cycle of action
cannot become immortal.

Charyapada 23

Bhusukupada

If you want to go hunting
Then kill five people.
To enter the lotus-garden
Remain single-minded
At morning it is alive at night it is dead.
Unless he gets the hunter's meat
Bhusuku will not enter the hut.
He caught the *maya*-deer
with the *maya*-net.
I know from Guru whose story it is.
The death of the body is not the end of self.
The garland remains.
The net cannot catch it.
Nor can the chains catch the deer.
In the restless race
the deer vanishes into the void.

Charyapada 24

Kanhupada

Like the moon the soul roses.
Illusion disperses with advice from Guru
The senses rise to the sky.
The seed is planted in the sky
Which penetrates three worlds.
When the sun rises, night disappears.
All illusions are cleared.
Like the swan which drinks milk only from milk-water
So should the substance of the world be drunk.

Charyapada 25

Tantipada

How religion was founded can be best known by the Vajra.
There are five *kalas*.
In the loom pure cloth can be woven.
I am the weaver.
The yarn is my own yet I do not know how to describe it.
The world is three and a half arms long.
This yarn is enough to weave for the whole world.
'*Anahata*' looms prepare the static cloth.
Two places have been broken and joined again stronger than ever.
Seated, I hear everything.
I have forsaken weaving and taken up the Vajra instead.

Charyapada 26

Shantipada

After washing the cotton only fibers remain.
After washing the fibers nothing remains.
Yet Heruka cannot be found.
Shanti says: Why think of him?
After washing the cotton I ate the Void.
I returned to the Void by destroying myself.
Shanti says: While one is travelling
Duality cannot be seen
even at the hair's end.
Shanti says: Without cause there is no action.
Such logic is not applicable to those who have experienced self.

Charyapada 27

Bhusukupada

The lotus blossomed until midnight.
Bodies of thirty two yoginis were in ecstasy.
The moon descended on the '*abadhuta marg*'.
The jewels describe the greatness of *Sahajananda*.
The moon entered Nirvana.
The lotus flows down the nerves.
One who experiences the four happiness'
Is the true Buddha.
Bhusuku says:
in union I have perceived Shahajanada and the great happiness.

Charyapada 28

Sabarapada

The mountains are high, the Sabari girl lives there.
She wears peacock feathers.
Her neck is adorned with a necklace of gunja berries.
O wild Sabara, o mad Sabara,
Do not cry of make a noisy complaint.
Your own wife is the Sahaja Sundari.
The tree blossomed into flowers, the branch touched the sky.
Sabari wears ear- ornaments and vajra.
She wanders in this forest alone.
The bed of three metals is placed.
Sabara spreads the bed with great pleasure.
Sabara the lover and Sabari his mistress made love into the morning.
The heart is a betel leaf, eating camphor with great enjoyment.
By embracing the Void in his neck he passes the night in bliss.
Consider the Guru's advice as your bow and, with you mind as the arrow,
Pierce through Nirvana in one try.

Charyapada 29

Luyipada

It is neither being nor non being.
Who will believe this explanation ?
Luyi says: O foot !

Real wisdom is very difficult to understand.
It is manifested in three elements.
But its location cannot be ascertained.
How can the Agama or Veda explain
That which does not have color, sign or image ?
Who shall I ask for an answer ?
Like the moon on water is untrue
It is neither here nor there.
Luyi says: What shall I think ?
What I am with I cannot find any reason.

Charyapada 30

Bhusukupada

Clouds of compassion dispel
The mist of being or non-being.
Bhusuku, look at the wonder rising in the sky
Shahaja in the true self.
To know it the divine illusion becomes dispelled.
In solitude your mind rests in perfect bliss.
I have experienced happiness
By freeing myself from my bonds,
Like the moon that enlightened the sky.
In this triad world there is much essence.
When Bhusuku rises, darkness is dispelled.

Charyapada 31

Aryadevapada

Where the mind, the senses, the vital- breath become destroyed.
Where does the spirit reside, I wonder ?
In a wondrous way karuna beats the drum.
Aryadeva is resplendent in hopelessness.
As moonlight reflects on the moon
so the mind bereft of the senses glows
I have discarded fear, hatred and social conduct.
By observation I have judged the Void.
Aryadeva foiled everything.
casting fear and hatred away.

Charyapada 32

Sarahapada

There in not sound, no drop- mp dun or the *mandala* of moon.
The mind is on its own, it is tree.
When you leave the straight pat, do not take the curved one.
Bodhi is in you. You do not have to go to Lanka.
Do not look at the mirror to see you bangles.
Look at yourself with inner sight.
The yogi achieves enlightenment on both sided of the band.
Evil in company truly dies.
Right or left is full of ponds and canals.
Saraha says, son, you take them for the straight path.

Charyapada 33

Dhendhonpada

My hut is on top the hill.
I have no neighbors.
There is no rice in my cooking pot.
Beloved guests keep coming in .
The snake attacked by the frog
Can drown milk return to the teat ?
The bullock has calved, the cow is barren.
The pail is full of milk after three evenings of milking.
One who is clever is fool.
One who is a thief is honest.
Everyday the fox fights with the lion.
The song of Dhendhonpa is understood by a few.

Charyapada 34

Darikapa

In body, work and mind
Darika holds the Void and compassion together
Floating in the sky.
He has acquired great happiness through changing
Non-destination into destination.
He exists in the enlightened bark in the sky.
What will your mantra, tantra, meditation or scriptures achieve?
In the unsettled realm of great bless Nirvana is accomplished.
You mix happiness and unhappiness into an illusory net.

Darika does not feel conscious of the self of not-self.
The king, king and the other king,
all are captivated by delusion.
Darika has received the twelfth world in the palace of Luyi.

Charyapada 35

Vadepada

For so long I was under a delusion.
Now I have understood by the light of Guru
My mind-king is destroyed.
It had fallen into the sea or sky.
I see everything empty in the ten direction.
There is no sin or virtue without the mind.
The 'Vajula' gave me the signs in the sky where I drank water.
Vade says, I am with misfortune.
I have eaten my mind-king.

Charyapada 36

Kanhupada

The arm of the Void hit reality
And all illusion has been eaten.
He does not sleep.
He cannot tell the difference between self and non-self.
Kanhu the naked falls asleep easily.
He has no senses, feels no pain.
He is in a deep sleep.
By freeing everyone he enjoys the sleep of bliss
I dreamt that the three worlds were empty.
The cycle of coming and going has stopped.
I shall hold Jalandharipa as a witness
The pundits do not want me by their side.

Charyapada 37

Tadakapada

I am not myself, whom shall I fear ?
Thus the desire for *mohamudra* ceased in me.
O yogin, feel Shahaja, do not make any mistake.

Like four million freedoms, so you have to be free.
O yogin, do as you wish.
Do not plunder along the shahaja-path.
If he feels the weight of his small while swimming,
How can knowledge of self-realization be explained.

Charyapada 38

Sarahapada

The body is a small boat, pure mind is its oar.
With the words of propriety Guru holds the helm.
Keep you mind still as you hold the helm.
One cannot go across by any other means.
The boat is towed by a rope.
Leave everything, unite under Shahaja.
There is no other way
There is fear on path
The dacoit is very dangerous.
The world is destroyed,
Saraha says : follow the bank.
If you can row you boat against the current,
then the boat will enter the sky.

Charyapada 39

Sarahapada

O my mind, even is sleep you remain attached
to ignorance for inherent weakness,
How will you fare listening to the Guru's words'
I wonder how this universe was created from sound.
You took a wife in Banga.
Your science flees towards the other shore.
O strange is the attachment to the earth.
Even the stranger seems close.
The world is like bubble in water.
With Shahaja the spirit becomes empty.
O my mind, while ambrosia is available you drink poison.
Saraha says an empty cow shed is bitter.
I alone destroy the world and roam freely.

Charyapada 40

Kanahupada

Within the mind all is futile,
Including the Agam and other texts and rosaries.
Say how to talk about Shahaja.
That which does not enter into body, speech or mind.
It is useless for the Guru to give advice to his disciple.
That which is beyond words, how can it be explained ?
The more that is said the more it is for nothing.
Guru is speechless and the disciple is without hearing.
Kanhu says : what is the Jina-jewel like ?
It is like the dumb trying to make the deaf understand.

Charyapada 41

Bhusukupada

In the beginning this world did not exist.
In delusion man begins to see the rope as if it is a snake.
Can a 'bora' snake bite him ?
He a wonderful yogi!
Do not make your hand salty.
If you do, this world and nature enters your heart.
All your desires and dreams will come to an end.
The mirage in the desert, Gandharva city,
Is like reflections in the mirror,
Like a cyclone that turns tidal waves into a wall of water.
Like thee, the barren woman's son at play.
Oil from sand, the horn of the hare.
The sky blossomed into a flower.
The soldier calls it strange,
Bhusuku calls it strange.
All have the same habit.
Fool, if are still under false belief,
Learn from the right Guru.

Charyapada 42

Kanhupada

My mind is still full of Shahaja emptiness.
Do not be saddened if my shoulders should fall.
How can you say Kanhu does not exist.

One who enters the three worlds at once.
The ignorant man is upset by the loss of the visible.
Do the broken waves swallow the sea ?
The fool cannot see when it is there.
He cannot trace the butter in the milk.
In this world no one actually comes or goes.
This thought engages the Kanhu yogi delightfully

Charyapada 43

Bhushukupada

The great Shahaja tree stands in all three worlds.
Who is free from worldly ties?
As water mixes with water easily,
likewise the mind-jewel mixes with the jewel of great bliss.
One who has no one as his own, who can be a stranger?
One whose beginning is with nothing
Does not belong to a world of birth and death.
Bhusuku and the soldier say: this is all the same.
In this world nothing comes, nothing goes.
There is no existence and no non-existence.

Charyapada 44

Kankanpada

When emptiness mixed with emptiness
It was the beginning of all religion.
I observe all four corners equally.
Through the middle stage Nirvana can be achieved.
The drop does not enter my heart.
When I want one the other is destroyed.
Learn about where you come from.
Set aside everything in the middle.
Kankana says: with the sound of '*tathata*'
Everything is destroyed.

Charayapada 45

Kanhupada

The mind is a tree, the five senses are its branches.

Hope bears fruits and leaves in abundance.
Kanhu says : using the advice of Guru as an axe
cut off the branches
so that passion, desire or thirst does not grow back.
The tree grows in the water of righteousness.
The Guru is witness, the wise uproot it.
One who does not know the mystery
of this tree's growth and destruction.
fool is he to have to come back again and again
in the Samsara receive pain.

Charayapada 46

Joyanandi

Behold, like in the dream, or in the mirror,
Existence is behind the curtain.
When the mind is free of illusion,
it is free of coming and going.
What does not burn, or get wet, or cut ?
Se how the maya-illusion wraps it in strong ties.
Shadow, illusion, body are all alike.
They dwell on both sides in different images.
Joyanadi says : cleanse your mind clearly
with the enlightenment course and nothing less.

Charayapada 47

Dharmapada

I am united in the midst of the lotus and the thunderbolt.
The Chandali woman burns with equity.
The Dombi' house is on fire.
We put the fire down with moon water.
When the straw burns smoke cannot be seen.
From the tip of the Sumeru mountain I have entered the sky.
Harihara, Brahma, Bhatta have all been burnt down.
The nine virtue Patta is burnt too.
Dharma says : I know very clearly
that water has arisen through the five pipes.

Charayapada 48

Kukkuripada

Kulish and Karuna are united.
The army is in deep sleep
The senses are won over.
Great Bliss becomes king of the Void.
The shell played the 'anahata' sound.
The magic tree and the worldly powers fled away.
Kukkuripa raised his finger aloft and said :
In the city of Bliss all has been won over.
The three worlds became filled with Great Bliss.
So says Kukkuripa in great content.

Note : In 1907, Hariprashad Sastri, a scholar working in the Royal Archive in Nepal discovered an ancient palm-leaf manuscript. It contained mystic poems, which were written around eighth-ninth century. The language employed in the poems (collectively known as the 'Caryapada' / 'Charyapada') is such that lineage to it is claimed by Oriya, Bengali, Maithili, Assamese and other languages. The discovery brought to light the oldest specimens of Indo-Aryan literary creativity. The text has been received from one of our consultants, but he could not specify the name of the translator who has rendered 48 of the charyapadas.
--- MetaNym

३

किछु मैथिली चर्यापद (बांग्ला लिपिमे) [सौजन्य- पार्थ प्रतिम राय] (पृ. ११७-१२२)

১ রাগ [পটমঞ্জরী] --- লুইপাদানাম্

কাআ তরুবর পঞ্চ বি ডাল।
চঞ্চল চীএ পইঠো কাল॥ ধ্রু॥
দিঢ় করিঅ মহাসুহ পরিমাণ।
লুই ভণই গুরু পুচ্ছিঅ জাণ॥ ধ্রু॥
সঅল সমাহিঅ কাহি করিঅই।
সুখ দুখেতেঁ নিচিত মরিঅই॥ ধ্রু॥
এড়ি এউ ছান্দক বান্ধ করণক পাটের আস।
সুনুপাখ ভিতি লেহু রে পাস॥ ধ্রু॥
ভণই লুই আমহে ঝানে দিঠা।
ধমণ চমণ বেণি পিণ্ডি বইঠা॥ ধ্রু॥

২ রাগ গবড়া --- কুক্কুরীপাদানাম্

দুলি দুহি পিটা ধরণ ন জাই।
রুখের তেন্তলি কুম্ভীরে খাঅ॥
আঙ্গন ঘরপণ সুন ভো বিআতী।
কানেট চোরে নিল অধরাতী॥ ধ্রু॥
সসুরা নিদ গেল বহুড়ী জাগঅ।
কানেট চোরে নিল কা গই [ন] মাগঅ॥ ধ্রু॥
দিবসই বহুড়ী কাড়ই ডরে ভাঅ।
রাতি ভইলে কামরু জাঅ॥ ধ্রু॥
অইসন চর্য্যা কুক্কুরীপাএঁ গাইড়।
কোড়ি মঝেঁ একু হিঅহি সমাইড়॥ ধ্রু॥

৩ - রাগ গবড়া--- বিরুবাপাদানাম্

এক সে শুণ্ডিনি দুই ঘরে সান্ধঅ।
চীঅণ বাকলঅ বারুণী বান্ধঅ॥ ধ্রু॥
সহজে থির করি বারুণী সান্ধ।
জেঁ অজরামর হোই দিঢ় কান্ধ॥ ধ্রু॥
দশমি দুআরত চিহ্ন দেখিআ।
আইল গরাহক অপণে বহিআ॥ ধ্রু॥
চউশটি ঘড়িয়ে দেল পসারা।
পইঠেল গরাহক নাহি নিসারা॥ ধ্রু॥
এক সে ঘড়লী সরুই নাল।
ভণন্তি বিরুআ থির করি চাল॥ ধ্রু॥

৪ রাগ অরু--- গুণ্ডরীপাদানাম্

তিয়ড্ডা চাপী জোইনি দে অঙ্কবালী।
কমলকুলিশ ঘান্টি করহুঁ বিআলী॥ ধ্রু॥
জোইনি তঁই বিনু খনহিঁ ন জীবমি।
তো মুহ চুম্বী কমলরস পীবমি॥ ধ্রু॥
খেপহুঁ জোইনি লেপ ন জাঅ।
মণিকুলে বহিআ ওড়িআণে সমাঅ॥ ধ্রু॥
সাসু ঘরেঁ ঘালি কোঞ্চা তাল।
চান্দসুজবেণি পখা ফাল॥ ধ্রু॥
ভণই গুণ্ডরী অমহে কুন্দুরে বীরা।
নরঅ নারী মাঝেঁ উভিল চীরা॥ ধ্রু॥

৫ রাগ গুঞ্জরী--- চাটিল্লপাদানাম্

ভবণই গহণ গম্ভীর বেগেঁ বাহী।
দুআন্তে চিখিল মাঝে ন থাহী॥ ধ্রু॥
দামার্থে চাটিল সাঙ্কম গঢ়ই।
পার্গামি লোঅ নিভর তরই॥ ধ্রু॥
ফাড্ডিঅ মোহতরু পাটি জোড়িঅ।
অদঅ দিঢ় টাঙ্গী নিবাণে কোরিঅ॥ ধ্রু॥
সাঙ্কমত চড়িলে দাহিণ বাম মা হোহী।
নিয়ড়ি বোহি দূর মা জাহী॥ ধ্রু॥
জই তুম্হে লোঅ হে হোইব পারগামী।
পুচ্ছতু চাটিল অনুত্তরসামী॥ ধ্রু॥

৬ রাগ পটমঞ্জরী --- ভুসুকুপাদানাম্

কাহেরে ঘিণি মেলি অচ্ছহু কীস।
বেটিল হাক পড়অ চৌদীস॥ ধ্রু॥
অপণা মাংসেঁ হরিণা বৈরী।
খনহ ন ছাড়অ ভুসুকু অহেরি॥ ধ্রু॥
তিন ন চ্ছুপই হরিণা পিবই ন পানী।
হরিণা হরিণীর নিলঅ ন জানী॥ ধ্রু॥
হরিণী বোলঅ সুণ হরিণা তো।
এ বণ চ্ছাড়ী হোহু ভান্তো॥ ধ্রু॥
তরংগতে হরিণার খুর ন দীসঅ।
ভুসুকু ভণই মূঢ়হিঅহি ন পইসই॥ ধ্রু॥

৭ রাগ পটমঞ্জরী --- কাহ্নুপাদানাম্

আলিএ কালিএ বাট রুন্ধেলা।
তা দেখি কাহ্নু বিমন ভইলা॥ ধ্রু॥
কাহ্নু কহিঁ গই করিব নিবাস।
জো মনগোঅর সো উআস॥ ধ্রু॥
তে তিনি তে তিনি তিনি হো ভিন্না।
ভণই কাহ্নু ভব পরিচ্ছিন্না॥ ধ্রু॥
জে জে আইলা তে তে গেলা।
অবণাগবণে কাহ্নু কাহ্নু বিমন ভইলা॥ ধ্রু॥
হেরি সে কাহ্নি নিঅড়ি জিনউর বট্টই।
ভণই কাহ্নু মো হিঅহি ন পইসই॥ ধ্রু॥

৮ রাগ দেবক্রী --- কম্বলাম্বরপাদানাম্

সোনে ভরিতী করুণা নাবী।
রুপা থোই নাহিক ঠাবী॥ ধ্রু॥
বাহতু কামলি গঅণ উবেঁসে।
গেলী জাম বহু উই কইসেঁ॥ ধ্রু॥
খুন্টি উপাড়ী মেলিলি কাচ্ছি।
বাহতু কামলি সদ্‌গুরু পুচ্ছি॥ ধ্রু॥
মাঙ্গত চড়হিলে চউদিস চাহঅ।
কেড়ুআল নাহি কেঁ কি বাহবকে পারঅ॥ ধ্রু॥
বাম দাহিণ চাপী মিলি মিলি মাঙ্গা।
বাটত মিলিল মহাসুহসাঙ্গা॥ ধ্রু॥

৯ রাগ পটমঞ্জরী --- কাহ্নুপাদানাম্

এবংকার দৃঢ় বাখোড় মোড্ডিউ।
বিবিহ বিআপক বান্ধণ তোড়িউ॥ ধ্রু॥
কাহ্নু বিলসঅ আসবমাতা।
সহজনিলীবন পইসি নিবিতা॥ ধ্রু॥
জিম জিম করিণা করিণিরেঁ রিসঅ।
তিম তিম তথতামঅগল বরিসঅ॥ ধ্রু॥
ছড়গই সঅল সহাবে সূধ।
ভাবাভাব বলাগ ন[া]ছুধ॥ ধ্রু॥
দশবলরঅণ হরিঅ দশদিসেঁ।
[অ]বিদ্যাকরিকুঁ দম অকিলেসেঁ॥ ধ্রু॥

১০ রাগ দেশাখ --- কাহ্নুপাদানাম্

নগরবাহিরি রে ডোম্বি তোহোরি কুড়িআ।
ছোই ছোই জাহ সো বাহ্মনাড়িয়া॥ ধ্রু॥
আলো ডোম্বি তোএ সম করিব মা সাঙ্গ।
নিঘিন কাহ্ন কাপালি জোই লাংগ॥ ধ্রু॥
এক সো পদুমা চৌষঠ্ঠী পাখুড়ী।
তহিঁ চড়ি নাচঅ ডোম্বী বাপুড়ী॥ ধ্রু॥
হা লো ডোম্বি তো পুছমি সদভাবে।
আইসসি জাসি ডোম্বি কাহরি নাবেঁ॥ ধ্রু॥
তান্তি বিকণঅ ডোম্বি অবরনা চাংগেড়া।
তোহোর অন্তরে ছাড়ি নড়পেড়া॥ ধ্রু॥
তু লো ডোম্বী হাঁউ কপালী।
তোহোর অন্তরে মোএ ঘেণিলি হাড়ের মালী॥ ধ্রু॥
সরবর ভাঞ্জিঅ ডোম্বী খাঅ মোলাণ।
মারমি ডোম্বি লেমি পরাণ॥ ধ্রু॥

১১ রাগ পটমঞ্জরী --- কৃষ্ণাচার্য্যপাদানাম্

নাড়িশক্তি দিঢ় ধরিঅ খট্টে।
অনহা ডমরু বাজই বীরনাদে॥
কাহ্ন কপালী যোগী পইঠ অচারে।
দেহনঅরী বিহরই একাকারে॥ ধ্রু॥
আলি কালি ঘণ্টা নেউর চরণে।
রবি শশী কুণ্ডল কিউ আভরণে॥ ধ্রু॥
রাগ দেষ মোহ লাইঅ ছার।
পরম মোখ লবএ মুত্তাহার॥ ধ্রু॥
মারিঅ শাসু নণন্দ ঘরে শালী।
মাঅ মারিআ কাহ্ন ভইল কবালী॥ ধ্রু॥

১২ রাগ ভৈরবী --- কৃষ্ণপাদানাম্

করুণা পিহাড়ি খেলহুঁ নঅবল।
সদ্গুরুবোহেঁ জিতেল ভববল॥ ধ্রু॥
ফীটউ দুআ মাদেসি রে ঠাকুর।
উআরিউএসেঁ কাহ্ন ণিঅড় জিনউর॥ ধ্রু॥
পহিলেঁ তোড়িআ বড়িআ মারিউ।
গঅবরেঁ তোড়িআ পাঞ্চজনা ঘালিউ॥ ধ্রু॥
মতিএঁ ঠাকুরক পরিনিবিতা।
অবশ করিআ ভববল জিতা॥ ধ্রু॥
ভণই কাহ্নু আহ্মে ভাল দান দেহুঁ।
চউষঠ্‌ঠি কোঠা গুণিয়া লেহুঁ॥ ধ্রু॥

১৩ রাগ কামোদ --- কৃষ্ণাচার্য্যপাদানাম্

তিশরণ ণাবী কিঅ অঠকুমারী।
নিঅ দেহ করুণাশূণমে হেরী॥ ধ্রু॥
তরিত্তা ভবজলধি জিম করি মাঅ সুইনা।
মঝ বেণী তরঙ্গম মুনিআ॥ ধ্রু॥
পঞ্চ তথাগত কিঅ কেড়ুআল।
বাহঅ কাঅ কাহ্নি ল মাআজাল॥ ধ্রু॥
গন্ধ পরস রস জইসোঁ তইসোঁ।
নিংদ বিহুনে সুইনা জইসো॥ ধ্রু॥
চিঅকণ্ণহার সুণতমাঙ্গে।
চলিল কাহ্ন মহাসুহসাঙ্গে॥ ধ্রু॥

১৪ ধনসী রাগ --- ডোম্বীপাদানাম্

গঙ্গা জউনা মাঝেঁরে বহই নাঈ।
তহিঁ বুড়িলী মাতঙ্গী পোইআ লীলে পার করেই॥ ধ্রু॥
বাহতু ডোম্বী বাহ লো ডোম্বী বাটত ভইল উছারা।
সদ্গুরুপাঅপসাএ জাইব পুণু জিণউরা॥ ধ্রু॥
পাঞ্চ কেড়ুআল পড়ন্তে মাঙ্গে পিঠত কাচ্ছী বান্ধী।
গঅণদুখোঁলে সিঞ্চহু পাণী ন পইসই সান্ধি॥ ধ্রু॥
চন্দ সূজ্জ দুই চকা সিঠি সংহার পুলিন্দা।
বাম দাহিণ দুই মাগ ন চেবই বাহতু ছন্দা॥ ধ্রু॥
কবড়ী ন লেই বোড়ী ন লেই সুচ্ছড়ে পার করই।
জো রথে চড়িলা বাহবা ণ জা[ন]ই কুলেঁ কুল বুড়ই॥ ধ্রু॥

১৫ রাগ রামক্রী --- শান্তিপাদানাম্

সঅসম্বেঅণসরুঅবিআরেঁ অলক্খ লক্খণ ন জাই।
জে জে উজূবাটে গেলা অনাবাটা ভইলা সোই॥ ধ্রু॥
কুলেঁ কুল মা হোই রে মূঢ়া উজূবাট সংসারা।
বাল ভিণ একু বাকু ণ্ ভূলহ রাজ পথ কন্ধারা॥ ধ্রু॥
মায়ামোহসমুদা রে অন্ত ন বুঝসি থাহা।
অগে নাব ন ভেলা দীসঅ ভন্তি ন পুচ্ছসি নাহা॥ ধ্রু॥
সুনা পান্তর উহ ন দীসই ভান্তি ন বাসসি জান্তে।
এষা অটমহাসিদ্ধি সিঝই উজূবাট জাঅন্তে॥ ধ্রু॥
বাম দাহিণ দোবাটা চ্ছাড়ী শান্তি বুলথেউ সংকেলিউ।
ঘাট ন গুমা খড় তড়ি ণ হোই আখি বুজিঅ বাট জাইউ॥ ধ্রু॥

১৬ রাগ ভৈরবী --- মহীধরপাদানাম্

তিনিএঁ পাটেঁ লাগেলি রে অণহ কসণ গাজই।
তা সুনি মার ভয়ঙ্কর রে বিসঅমণ্ডল ভাজই॥ ধ্রু॥
মাতেল চীঅগএন্দা ধাবই।
নিরন্তর গঅণন্ত তুসেঁ ঘোলই॥ ধ্রু॥
পাপ পুণ্ণ বেণি তোড়িঅ সিকল মোড়িঅ খম্ভাঠাণা।
গঅণটাকলি লাগি রে চিত্ত পইঠ নিবাণা॥ ধ্রু॥
মহারসপানে মাতেল রে তিহুঅন সএল উএখী।
পঞ্চবিসঅনায়ক রে বিপখ কোবি ন দেখি॥ ধ্রু॥
খররবিকিরণসন্তাপে রে গঅণাঙ্গণ গই পইঠা।
ভণন্তি মহিত্তা মই এথু বুড়ন্তে কিম্পি ন দিঠা॥ ধ্রু॥

১৭ রাগ পটমঞ্জরী --- বীণাপাদানাম্

সুজ লাউ সসি লাগেলি তান্তী।
অণহা দাণ্ডী একি কিঅত অবধূতী॥ ধ্রু॥
বাজই অলো সহি হেরুঅবীণা।
সুনতান্তিধনি বিলসই রুণা॥ ধ্রু॥
আলি কালি বেণি সারি সুণিআ।
গঅবর সমরস সান্ধি গুণিআ॥ ধ্রু॥
জবে করহা করহকলে চাপিউ।
বতিশ তান্তিধনি সঅল বিআপিউ॥ ধ্রু॥
নাচন্তি বাজিল গান্তি দেবী।
বুদ্ধ নাটক বিসমা হোই॥ ধ্রু॥

১৮ রাগ গউড়া --- কৃষ্ণবজ্রপাদানাম্

তিনি ভুঅণ মই বাহিঅ হেলেঁ।
হাঁউ সুতেলি মহাসুহলীলেঁ॥ ধ্রু॥
কইসণি হালো ডোম্বী তোহোরি ভাভরিআলী।
অন্তে কুলিণজণ মাঝেঁ কাবালী॥ ধ্রু॥
তঁই লো ডোম্বী সঅল বিটালিউ।
কাজণ কারণ সসহর টালিউ॥ ধ্রু॥
কেহো কেহো তোহোরে বিরুআ বোলই।
বিদুজণ লোঅ তোরে কণ্ঠ ন মেলই॥ ধ্রু॥
কাহ্নে গাই তু কামচণ্ডালী।
ডোম্বী ত আগলি নাহি চ্ছিণালী॥ ধ্রু॥

১৯ রাগ ভৈরবী --- কৃষ্ণপাদানাম্

ভবনিব্বাণে পড়হ মাদলা।
মণপবণবেণি করণ্ডকশালা॥ ধ্রু॥
জঅ জঅ দুন্দুহিসাদ উছলিআঁ।
কাহ্ন ডোম্বীবিবাহে চলিআ॥ ধ্রু॥
ডোম্বী বিবাহিআ অহারিউ জাম।
জউতুকে কিঅ আণুতু ধাম॥ ধ্রু॥
অহণিসি সুরঅপসঙ্গে জাঅ।
জোইণিজালে রঅণি পোহাঅ॥ ধ্রু॥
ডোম্বীএর সঙ্গে জো জোই রত্তো।
খণহ ন ছাড়অ সহজ উন্মত্তো॥ ধ্রু॥

২০ রাগ পটমঞ্জরী --- কুক্কুরীপাদানাম্

হাঁউ নিরাসী খমণভতারি।
মোহোর বিগোআ কহণ ন জাই॥ ধ্রু॥
ফেটলিউ গো মাএ অন্তউরি চাহি।
জা এথু চাহাম সো এথু নাহি॥ ধ্রু॥
পহিল বিআণ মোর বাসনপূড়া।
নাড়ি বিআরন্তে সেব বাপূড়া॥ ধ্রু॥
জাণজৌবণ মোর ভৈলেসি পূরা।
মূল নখলি বাপ সংঘারা॥ ধ্রু॥
ভণথি কুক্কুরীপা এ ভব থিরা।
জো এথু বুঝই সো এথু বীরা॥ ধ্রু॥

২১ রাগ বরাড়ী --- ভুসুকুপাদানাম্

নিসি অন্ধারী মুসঅ চারা।
অমিঅভখঅ মুসা করঅ আহারা॥ ধ্রু॥
মার রে জোইআ মুসা পবণা।
জেণ তুটঅ অবণাগবণা॥ ধ্রু॥
ভববিন্দারঅ মুসা খণঅ গাতী।
চঞ্চল মুসা কলিআঁ নাশক থাতী॥ ধ্রু॥
কাল মুসা উহ ণ বাণ।
গঅণে উঠি চরঅ অমণধাণ॥ ধ্রু॥
তাব সে মুসা উঞ্চল পাঞ্চল।
সদ্গুরুবোহে করহ সো নিচ্ছল॥ ধ্রু॥
জবে মুসাএর চার তুটঅ।
ভুসুকু ভণঅ তবে বান্ধন ফিটঅ॥ ধ্রু॥